सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं
अध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 43, अंक : 9
दिसम्बर – 2010

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

अहम् सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधाः भावसमन्विता।।

(गीता 10/8)

मैं (भगवान) ही सबका उत्पत्ति–स्थान हूँ और समस्त जगत् की मुझ (भगवान) से ही प्रवृत्ति होती है, यह मानकर बुद्धिमान् भावसम्पन्न पुरुष अपने (सब कर्मों द्वारा सर्वत्र सदा) मेरा ही भजन सेवन करते हैं।

◆ ◆ ◆

रुचं नोधेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसू नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्।।

(यजुर्वेद)

जैसे परमात्मा पक्षपात न करके सभी वर्ग के प्राणियों से समान रूप से प्रीति करता है, वैसे ही हम सब मिलकर, ब्रह्मवेत्ता विद्वान, राजकीय व्यक्ति, व्यवसायी और सेवायें प्रदान करने वाले सभी नागरिक परस्पर रुचि और प्रीति पूर्ण व्यवहार करें।

◆ ◆ ◆

तदात्वे चानुबन्धे वा यस्य स्यादशुभं फलम्।
कर्मणस्तन्न कर्तव्यमेतद् बुद्धिमतां मतम्।।

(चरक संहिता)

कार्य करते समय, तत्काल या भविष्य में, जिसका फल अशुभ अर्थात् हानिकारक हो, इसका विचार करके, ऐसे काम कदापि नहीं करना चाहिए। यह बुद्धिमानी का सिद्धान्त है।

◆ ◆ ◆

अवशेन्द्रिय चित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया।
दुर्भगाभरण प्रायो दानं भारः क्रिया विना।।

(हितोपदेश)

जिनके वश में चित्त और इन्द्रिय नहीं हैं उनकी क्रिया (कर्म) हाथी के स्नान के समान व्यर्थ है। बिना आचरण किये ज्ञान बोझ के समान है जैसे कुरूप स्त्री के पास आभूषण।

◆ ◆ ◆

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थः— शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरुप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्षः 43 अंक : 9

सहस्त्रं न इन्द्रोतयो न
सहस्त्रमिषोंहरिवो गूर्ततमाः।
सहस्त्रं रायो मादयध्यै
सहस्त्रिण उप न सन्तु वाजाः।।

हे अश्व युक्त इन्द्रदेव! आपके हजारों रक्षा साधन हमारे संरक्षण निमित्त हैं। हे इन्द्रदेव! आप हजारों प्रकार के प्रशंसनीय अन्न, आनन्दित करने वाले धन तथा असीमित बल हमें प्रदान करें।

दिसम्बर, 2010

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY
Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख –योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	8
3.	भक्त श्री पुंडलिक –दर्शनानन्द	11
4.	योगीराज महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी का 101वाँ जन्मोत्सव –संजीव	14
5.	स्वधर्म में मरना श्रेयस्कर –जयनारायण राय	16
6.	ॐ श्री महाप्रभु रामलाल चालीसा	18
7.	अर्जुन के विषाद का मूल कारण –जनक कुलश्रेष्ठ	24
8.	अष्टाङ्ग योग –प्रो. ऋषिराम शर्मा	27
9.	श्री गीतामृत पदावली –डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी	32
10.	योग में गायत्री मन्त्र का स्वरूप –डा. जे.पी. शर्मा	35

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 140.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

सिद्धों का शक्तिपात एवं उपाय प्रत्यय

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सिद्ध सिद्धान्त क्या है ? और साधक सिद्धों के दर्शन किस प्रकार कर सकता है यह एक विशेष विचारणीय विषय है। वैसे तो सिद्ध सिद्धांतों से हमारे सभी यौगिक ग्रन्थ परिपूरित हैं। 'हठयोग प्रदीपिका ''शिव संहिता''गोरक्षपद्धति' यौगिक उपनिषदें सभी सिद्ध सिद्धांतों से परिपूरित हैं फिर भी आम सभी के हितार्थ हम थोड़े से शब्दों में 'सिद्धसिद्धांत' एवं 'सिद्ध' शब्द की परिभाषा लिख देना ही ठीक समझते हैं 'सिद्ध' शब्द का यथार्थ अर्थ है 'कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम् सर्वथा सक्त: सैव सिद्ध:' अर्थात् जो किसी कार्य को करके किये हुए को बिगाड़ दे फिर ज्यों का त्यों बिगड़े हुए को ठीक कर दे यही सर्वसमर्थता का ठीक प्रमाण है। ऐसे ही सर्वशक्ति सम्पन्न कर्तुम् अकर्तुम् सर्वथा सक्त: समर्थ वाले महापुरुषों को सिद्ध कहते हैं। ये लोग सब प्रकार से आत्मदर्शी होते हैं एवं सर्वशक्तियों से सम्पन्न, भूतमयी, प्रकृति पर हुकूमत करने वाले दिव्य देहधारी महापुरुष होते हैं। योग हमें बतलाता है-

परमाणु परम महत्वान्तोऽस्य वशीकार:।

अर्थात् परमाणु से लेकर परम महत्तत्त्व या मूल प्रकृति पर्यन्त पुरा अधिकार है। उसका चित्त अभ्यास करते-करते उस स्थिति को प्राप्त कर लेता है कि फिर उसको अभ्यास की जरूरत नहीं रहती। पढ़िए व्यास भाष्य की पंक्तियाँ-

सूक्ष्मे निविशमानस्य परमाणवन्तं स्थितिपदं लभते इति, भाले निविण मानस्य परनमहत्वन्तं स्थितिपदं चित्तस्य एवं तामुभयीं कोटिमनुधावतो योऽस्याप्रतिघात: स परो वशीकार: तद्वशीकारात्परिपूर्ण योगिनश्चित्तन पुनरभ्यासकृतं परिकर्मापेक्षत इति।।

अर्थात् जिस समय योगी सूक्ष्म में संयम करना आरम्भ करता है वह परमाणु तक देख लेता है और जिस समय स्थूल में संयम करता है तो उस समय मूल प्रकृत पर्यन्त महत्तत्त्व तक पूर्णाधिकार हो जाता है। सूक्ष्म में अभ्यास करने वाले तथा स्थूल में अभ्यास करने वाला योगी जिस समय स्थिति को प्राप्त कर लेता है वह उसका सरमवशीकार कहलाता है अर्थात् उसका

चित्त इतना संयमित हो जाता है कि उसको पुनः अभ्यास से संयम करने की आवश्यकता नहीं रहती केवल संकल्पमात्र से उसका संयम सिद्ध रहता है। उसका चित्त बहुत ही निर्मल होता है जहाँ वह संयम करता है वहीं स्थिति को पा जाया करता है। ऐसे योगी समाधि एवं अपने संयम के बल से परम वशीकार वाले होते हैं। उनके अन्दर कर्तुम अकर्तुम अन्यथा कर्तुम की ताकत अनायास ही बनी रहा करती है और स्थान-स्थान पर जैसा कि योगदर्शन के विभूतिपाद के अन्तर्गत विभूतियों का वर्णन किया गया है, उन सभी विभूतियों को योगी अपने संयम के बल से प्राप्त कर लिया करते हैं।

यही लोग कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम् की शक्ति वाले कहलाते हैं। तुलसीकृत रामायण में कागभुसुण्डि उपख्यान मिलता है। उसमें आदि महासिद्ध भगवान शिव के कर्तुम् अकर्तुम अन्यथा कर्तुम् की शक्ति का पूरा परिचय मिलता है। गुरुदेव से अभिमान पूर्वक पीठ दे करके अपना भजन करने वाले कागभुसुण्डि को भगवान सदाशिव ने 84 लाख योनि भोगने का श्राप दिया और जिस समय उसके गुरुदेव ब्राह्मण ने अपने शिष्य पर दया करने के विचार से भगवान शिव की स्तुति की, जिसको प्रायः सभी लोग जानते हैं उस स्तुति को सुन करके भगवान शिव प्रसन्न हुए और ब्राह्मण को वर माँगने की आज्ञा प्रदान किये उस ब्राह्मण ने प्रथम तो अपने हित के लिए उनकी भक्ति को माँगा और दूसरे वर के अन्दर अपने शिष्य पर अनुग्रह करने के लिए वरदान माँगा। जिसके फलस्वरूप भगवान शिव ने अपने श्राप को बहुत ही सूक्ष्म में निपटा दिया तथा साथ ही साथ यह कह दिया कि मेरे मुख निकला वचन बिल्कुल मिथ्या तो नहीं होगा। उन योनियों में उसे जाना ही होगा और जन्म लेना पड़ेगा, किंतु यह जब-जब जिस योनि में जन्म लेगा इसको कोई दुख नहीं होगा किंतु वे बराबर इस योनि से, भोग भोगकर जल्द निकल जायेगा। इसी का नाम है कर्तुमअकर्तुम् अन्यथा कर्तुम्'। ठीक शब्दों अन्दर यही सिद्ध शब्द की यथार्थ परिभाषा है।

संसार में एक नियम चलता है और वह यह कि हमारा चित्त प्रज्ञा प्रवृत्ति स्थितिभाल होने से त्रिगुणात्मक है। इसलिए संसार में जन्म लेने वाले व्यक्ति सभी एकमत के हों यह सम्भव नहीं हो सकता। यही कारण है कि 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना' का सिद्धांत सभी जगह चालू रहता है। इसी कारण से सारे संसार में नाना प्रकार के सिद्धांतवादी लोग हैं, किंतु वे सभी अपनी-अपनी मति के अनुसार सिद्धांतों की स्थापना करते हैं। किंतु इनके ये सिद्धांत सिद्धांत नहीं हैं क्योंकि वे सब अपने आप में सिद्ध नहीं हैं। ऋतम्भराप्रज्ञा प्राप्त योगी ही सिद्धांतों की रचना कर पाते हैं। सिद्धों के सिद्धांत ही वस्तुतः मूलसिद्धांत हैं क्योंकि उनके वक्ता आप्तपुरुष सर्वज्ञातृत्व शक्ति से सम्पन्न होते हैं। हमारा शास्त्रीय सिद्धांत है-

यस्या श्रद्धेयार्थो वक्ता न द्रष्टानुमिताः स आगमः प्लवते, मूलवक्तरि तु दुष्टनुमितार्थे निर्विप्लवः स्यात्।।

अर्थात् जिस सिद्धांत को कहने वाले वक्ता अश्रद्धय हैं एवं मनमाने सिद्धांतों की कल्पना अपने मन से करते हैं उनके सिद्धांत सर्वथा गिर जाया करते हैं, मूल वक्ता आदि महासिद्ध जो सदा प्रकर्ष गति से ही सिद्ध हैं उनके सभी सिद्धांत प्लवन रहित (चिरस्थायी) होते हैं अर्थात् उनके मुख से निकली वाणियाँ कभी भी असत्य नहीं होती हैं इन्हीं की वाणियों को सिद्ध सिद्धांत कहा जाता है, यही कारण है कि हमारे ऋषि मुनियों के मौलिक सिद्धांत, सिद्धांत हैं क्योंकि उनका सभी प्रकार से पर्यवेक्षण कर लेने के बाद उनमें किसी प्रकार की कमी दिखाई नहीं पड़ती। आजकल के समय में लोग अनेकों प्रकार की भविष्यवाणियाँ करते हैं उनमें से कोई कोई ही सत्य निकल पाती है अन्यथा प्रायः अधिकांशतः गलत निकलती हैं, किंतु हमारे ऋतम्भराप्रज्ञा प्राप्त ऋषि मुनियों ने जो-जो भी भविष्यवाणियां कीं सभी प्लवन रहित हैं। भविष्यपुराण को उठाकर पढ़िए उसमें कलिकाल के वर्णन के अन्दर निर्बीजा पृथ्वी, निरौषधी रसः, निचामहत्वंगताः भार्यामन्त्री विरोधिनी पररताः, पुत्राःपितु दूषिकाः आदि-आदि बातें लिखी हैं जो वाणियां ज्यों की त्यों सत्य हो रही हैं। क्योंकि इन वाणियों के वक्ता श्रद्धेय थे, सिद्ध थे एवं सर्वज्ञातृत्व शक्ति से सम्पन्न थे। सिद्धांत शब्द का अर्थ ही यह है कि जिसका अन्तिम निष्कर्ष प्लवन रहित स्थिर शुद्ध सत्य हो, वही सिद्धांत कहलाता है। अब यही बात है कि ऐसे सिद्ध सिद्धांत के वक्ता, महापुरुषों के दर्शन को मनुष्य कैसे प्राप्त करे और किस प्रकार से उनके मौलिक सिद्धान्तों को अपने जीवन में घटित कर सकें इसके शास्त्रोक्त दो विशेष उपाय हैं। जिनके द्वारा मनुष्य सिद्ध दर्शन का अधिकारी बन जाता है। पहला उपाय है कि मनुष्य अपने जीवन के अन्दर पुण्य संवर्धन करे और अपनी मानसपवित्रता को बढ़ाता चला जाये। पुण्य संवर्धन के लिए यज्ञदान तप कर्म, पावनानी मनीषिणा अनेक प्रकार के यज्ञ करना, दान करना तथा तप करना मनुष्य के अन्तःकरण को पवित्र करने वाले कर्म हैं। इन सब कर्मों के करने से पुण्य का संग्रह बढ़ता चला जाता है। मनुष्य उत्कृष्ठ तप तथा साधना करता हुआ यज्ञ, दान आदि करता हुआ अपने को उत्कृष्ट पुण्य के खजाने से भर लेता है। पुण्य सम्बर्द्धन करता चला जाय तथा बढ़े हुए पुण्य की रक्षा भी करता चला जाय। एक मनुष्य बड़े-बड़े दान भी करता है, बड़े-बड़े यज्ञ करता है तथा तपश्चर्यायें करता है उनके फलस्वरूप उसका पुण्य बढ़ता तो चला जायेगा किंतु उसमें यदि क्रोध है, अहंकार है और साथ के साथ ईर्ष्यालु स्वभाव होने से परिपीड़न के भाव बने रहते हैं तो वह अपनी बढ़ी हुई पुण्य की निधि को साथ-साथ नष्ट भी करता चला जाता है। ऐसी स्थिति में वह सिद्ध-दर्शन का अधिकारी नहीं हो सकता इस विषय

में हमारा शास्त्रीय लेख है-

इदूरन्तु भवेद् यद् यद् तत् तत् भुक्त्वा ज्ञानी, पुनरभवेत् पश्चात् पुण्ये न लभते सिद्धेनसः संगतीय ततः सिद्धस्य कृपया योगी भवति, नान्यथा ततो नश्यती संसारो अयम् नान्यथा शिव भाषितम्।।

अर्थात् ज्ञानी आत्मा भी अपनी क्लिष्टा क्लिष्ट वृत्तियों के उत्थान पतनात्मक विविध प्रकार के भोगों को भोगता हुआ जब उसकी पुण्यनिधि बढ़ जाती है उसके फलस्वरूप सिद्धों की संगति को प्राप्त करती है और सिद्धसंगति को प्राप्त करने के बाद वह उनकी अनुकम्पा को पाकर योगी बन जाता है तब यह संसार का बन्धन टूटता है। यहाँ स्वयं भगवान शिव ने कहा। इसलिए निष्काम कर्म यो ।करता हुआ साधक विविध प्रकार के पुण्य कर्म करके अपनी पुण्य निधि को बढ़ा लेता है ।ह सिद्ध संगति का अधिकारी बन जाता है। उसके बाद दूसरा उपाय है-स्वाध्याय।

स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः।। सा. पा. 44।।

देवाः, ऋषयः, सिद्धाश्चस्वध्यायशील-दर्शनंगच्छन्ति,

कार्ये चास्य वर्त्तन्ताइति।। 44।।

अर्थात् स्वाध्याय के बल से साधक इष्टदेव की कृपा का लाभ करता है और उसी स्वाध्याय के प्रभाव से मन्त्रद्रष्टा ऋषि लोग, देव लोग और सिद्धों के दर्शन प्राप्त होते हैं। यज्ञ, दान, तप ादि पुण्य कर्मों का करना हर व्यक्ति के लिए सुलभ साधन नहीं है क्योंकि यज्ञ, दान आदि अर्थाभाव के सभी लोग नहीं कर सकते किंतु स्वाध्याय आदि यदि कोई दृढ़ लगन से करना चाहता है तो वह कर भी सकता है। अनुभवी सन्तों का अनुभव है जो पवित्र भागीरथी के तट पर बैठ करके अपने इष्ट के मन्त्रों का जाप करते रहते हैं। उन्हीं के स्त्रोत्र आदि का पाठ करते रहते हैं उसका परिणाम यह निकलता है कि वे लोग सिद्धों के दर्शन को पा जाया करते हैं एवं सिद्ध सिद्धान्त के अनुसार सिद्धों का दर्शन अमोघ होता है उसके फलस्वरूप साधक उनकी कृपा को पाकर अपने आपको कृतार्थ बना लेता है। उनके शक्तिपात से उस सधक को सहज ही समाधि प्राप्त हो जाती है। अतः इस लेख के विषय को समझ करके एवं सिद्ध की परिभाषा एवं सिद्धान्त की परिभाषा जानकर अपने आपको अध्यात्म मार्ग में बढ़ाने का प्रयत्न करें। ऐसा करने पर उस अनुग्रह को पाकर अपने आपको कृत-कृत्य बना लेगा।

ध्यान क्या व कैसे ?

आचार्य ब्रह्मचारी श्री व्हासलाल

पिछले लेख में एक सूत्र के माध्यम से यह बतलाने का प्रयास किया गया था कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध से हम भोग और योग दोनों प्राप्त कर सकते हैं 'भोगापवर्गार्थम् दृश्यम्' के अनुसार पतंजलि जी महाराज बताये हैं कि दृश्य अर्थात् प्रकृति का दो प्रयोजन है जीव को भोग प्रदान करना तथा अपवर्ग की प्राप्ति कराना। प्रकृति हमें बन्धन में भी डालती है और प्रकृति ही हमें मुक्त करती है। जब जीव शब्द, स्पर्श के उपयोग में लगा रहता है तो वह भोगों में फँसता चला जाता है और उसके बन्धन दृढ़तर होते चले जाते हैं और पतन की ओर चला जाता है प्रकृति जीव को बन्धन से मुक्त भी करती है। यदि कोई साधक अपनी वृत्ति को अन्तर्मुखी बना ले और विषय को अध्यात्म लाभ के लिए प्रयोग करे तो धीरे–धीरे समाधि की ओर बढ़ जाता है और अन्ततोगत्वा बुद्धि योग अथवा ऋतम्भरा बुद्धि को प्राप्त कर लेता है जो जीव को मुक्ति देने में सक्षम है। मन को एकाग्र करने के साधन के रूप में भगवान पतंजलि जी ने तीसरा सूत्र दिया है।

'विशोका वा ज्योतिषमती'

अर्थात् विशोका, शोक रहित, रजोतमोगुण शून्य सात्विक प्रकाश में मन को एकाग्र करने का अभ्यास करें तो उस सात्विक प्रकाश में मन एकाग्र हो जाता है। अथवा ज्योतिष्मती प्रवृत्ति में मन एकाग्र कर लें तो मन की एकाग्रता हो जाती है। योग शास्त्र के अनुसार हमारे शरीर में छः चक्र हैं जो चेतना के केन्द्र हैं इन चक्रों में मन को एकाग्र या विलय किया जाये तो उन–उन चक्रों का विशेष–विशेष अलौकिक लाभ प्राप्त हो जाता है। ये सारे केन्द्र ज्योति के केन्द्र हैं। ये हैं– मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध व आज्ञा चक्र। इन चक्रों में मन को एकाग्र किया जाये तो अद्भुत लाभ सहज ही प्राप्त हो जाता है। सम्प्रदाय भेद से आचार्य या गुरु इन चक्रों में ध्यान करने की आज्ञा देते हैं। मूलाधार चक्र से ही ध्यान प्रारम्भ करना चाहिए। ये चक्र पृथ्वी तत्व का केन्द्र माना गया है और इसका गन्ध तन्मात्र है। इस चक्र के अधिष्ठात् देव भगवान गणपति हैं। इस कमल के ध्यान का परम उत्कृष्ट फल शिव संहिता में इस प्रकार दिया है।

यं यं कामयते चित्ते तं तं फलमवाप्नुयात्।
निरन्तर कृताभ्यासात्तं पश्यति मुक्तिदम्।

वहिरम्यन्तरे श्रेष्ठं पूजनीयं प्रयत्नतः।
ततः श्रेष्ठतम् ह्येतन्नान्यदस्ति मतं मम॥

इस कमल का ध्यान करने वाला योगी जिस-जिस कामना का मन में चिन्तन करता है उस उसके फल को अवश्य ही प्राप्त कर लेता है। निरन्तर अभ्यास करने पर मुक्तिदाता परम तेज को देखता है। बाहर भीतर दृष्टि समान हो जाती है। इससे अधिक और श्रेष्ठ ध्यान नहीं है। यह सर्वोत्कृष्ट ध्यान है। जो लोग इस पवित्र ध्यान को छोड़कर इधर-उधर का प्रयत्न करते हैं वे बड़ी भूल करते हैं। इस प्रकार से शिव संहिता, उपनिषद् तथा नाथ सम्प्रदाय के ग्रन्थों में षटचक्र की साधना एवं अलौकिक लाभ का वर्णन मिलता है। मूलाधार चक्र के सिद्ध हो जाने पर योगी भूमि के अन्दर प्रवेश कर जाता है। पृथ्वी तल में अन्य चार तत्व जल, तेज, वायु और आकाश विद्यमान रहते हैं।

पंच तत्वों की साधना के सिद्ध हो जाने पर योगी अपने शरीर को हजारों वर्षों तक सुरक्षित रख सकता है। ऐसे योगी भूतजयी योगी कहलाते हैं वे ही अमर योगी कहलाते हैं। जिनको पंच महाभूतों पर जय नहीं है वह अपने शरीर को दीर्घकाल तक नहीं रख सकते। विभूतिपाद में एक सूत्र है 'मूर्धज्योतिषि सिद्ध दर्शनम्' अर्थात् मूर्धा ज्योति में संयम करने से सिद्ध पुरुषों के दर्शन होते हैं। कुछ सम्प्रदाय के लोग यह कहते सुने जाते हैं कि आज्ञा चक्र से नीचे के चक्र में ध्यान करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि आज्ञाचक्र से नीचे तो सब माया ही है। वे लोग आज्ञाचक्र तथा उससे आगे सहस्त्रार में ध्यान केन्द्रित करने की बात कहते हैं। किंतु यह बात ठीक प्रतीत नहीं होती है। हठयोग विज्ञान के ज्ञाता आचार्यों के अनुसार मूलाधार चक्र में ही कुण्डलिनी शक्ति विद्यमान है। साधारण अवस्था में वह सोई हुई है प्रसुप्त है किंतु ध्यान साधना से, प्राणायाम से अथवा सिद्ध गुरु की कृपा से कुण्डलिनी शक्ति का प्रबोध होता है और साधक दिव्य शक्तियों से ओत-प्रोत हो जाता है उसे दिव्य दृष्टि मिल जाती है और सही अर्थों में अध्यात्म-ज्ञान का उसे साक्षात्कार होता है। जब तक कुण्डलिनी जागरण नहीं होता है ज्ञान का उदय नहीं होता मनुष्य अज्ञान के दायरे में ही जीता है। इसलिए कुण्डलिनी जागरण आवश्यक है। इसके जागरण से ही सारे चक्र आलोकित हो जाते हैं अनायास ही ज्ञान के केन्द्र या चक्र प्रकाशित हो जाते हैं। हिमालयस्थ जितने भी योगी हैं वे भूतजयी सिद्ध होते हैं इस कारण से बिना आहार के जीवित रहते हैं और दीर्घजीवी होते हैं। मेरे गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज पंच तत्वों की साधना के विषय में बताते हुए अपने बड़े गुरुभाई परमादरणीय श्री गोपालानन्द जी का जिक्र किया करते थे। महाप्रभु रामलाल जी महाराज की आज्ञा से वे पंच तत्वों की साधना में लगे हुए थे। जिस दिन श्री गोपालानन्द जी महाराज अग्नि तत्व का आकर्षण करते थे तो उनका शरीर इतना गर्म हो जाता था कि उसे छू भी नहीं सकते थे अग्नि की तरह शरीर तप जाता था। जब वे जल तत्व का आकर्षण करते थे तो शरीर बर्फ की भांति अत्यन्त ठंडा हो जाता था, शरीर का स्पर्श भी नहीं किया जा सकता था। इस प्रकार

से वे पंच तत्वों की साधना में लगे हुए थे। योगी जन इस प्रकार से भूत जय की साधना करते हैं और क्रमश: पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश तत्व पर अधिकार प्राप्त कर लेते हैं और अमरत्व को प्राप्त कर लेते हैं।

पातंजलि योग के अनुसार सम्प्रज्ञात समाधि के चार भेद क्रमश: वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत तथा अस्मितानुगत हैं। इसमें वितर्कानुगत समाधि में योगी पंच महाभूतों के स्थूल दृश्य को देखता है। वितर्कानुगत समाधि की व्याख्या लिखते हुए भाष्यकार व्यासदेव जी लिखते हैं – **'वितर्क: चित्तस्यालम्बने स्थूलाभोग:'** चित्त को स्थिर करने के लिए स्थूल विषय का आलम्बन लेते हैं। स्थूल विषय के आलम्बन का यह तात्पर्य नहीं है कि अभ्यासी आँखें खोल कर स्थूल विषयों को देखता रहे। साधक अपनी आँखें बन्द करके धारणा की पद्धति से मन को भीतर ही एकाग्र करे। प्रारम्भ में साधक को पहाड़, नदी नाले, जंगल आदि का साक्षात्कार होगा। अभ्यास करते रहने पर स्वप्न में भी पंच महाभूतों का दर्शन साधक को होता रहता है। इसी प्रकार से वितर्कानुगत में ही साधक इन्द्रियों के स्थूल रूप का अनुभव ध्यान में करेगा।

इस प्रकार से साधक ज्योतिर्मय चक्रों का साक्षात्कार कर लेता है। विचारानुगत समाधि में सूक्ष्म तत्व तन्मात्राओं का तथा इन्द्रियों के दिव्य रूपों का साक्षात्कार करता है। देव दर्शन एवं दिव्य पुरुषों का दर्शन इसी विचारानुगत में होता है। पतंजलि के सूत्र पर भाष्य लिखते हुए व्यासदेव जी महाराज लिखते हैं– सूक्ष्मो विचार: अर्थात् सूक्ष्म तत्वों का दर्शन विचारानुगत में होता है। इसी अवस्था में योगी के पतन का भय रहता है। देवता लोग इसी में योगी को च्युत करने के लिए नाना प्रकार के झूठे प्रलोभन देते हैं। किंतु गुरुभक्त, गुरु कृपा से इन प्रलोभनों से बच जाता है अन्यथा पतन की पूरी–पूरी संभावना रहती है। इस अवस्था में सिद्ध गुरु अपने शिष्य की सब प्रकार से पतन से रक्षा करते हैं।

सच्चा बुद्धिमान् तो वह है, जो इस रहस्य को समझ लेता है और सारे जगत् की उत्पत्ति का कारण तथा जगत् की सारी प्रवृत्तियों का हेतु एकमात्र श्री भगवान् को मानकर, भावपूर्ण हृदय से भगवान् को भजता है।

भक्त श्री पुंडलिक

दर्शनानन्द

भगवान विट्ठल के अवतार का कारण भक्त पुंडलिक माने जाते हैं। भगवान विट्ठल की जो आरती मराठी में गायी जाती है, उसमें कहा गया है कि – अट्ठाईस युगों से भगवान ईंट पर खड़े हैं। ईंट को मराठी में विट कहते हैं इसलिए भगवान विट्ठल कहे गये। इस हिसाब से भक्त पुंडलिक का जन्म समय भी अट्ठाईस युगों पहले का समझना चाहिए। ये रहा श्रद्धा का विषय परंतु इतिहास क्या कहता है। इतिहास भगवान विट्ठल व भक्त पुंडलिक के विषय में निश्चित कुछ भी नहीं बताता। परंतु इतना जरूर है कि पंढरपुर का भगवान विट्ठल का मन्दिर शके 1100 से 1200 के दरम्यान बना होने के शिलालेख मन्दिर में मिलते हैं। जिन पर शके 1111, 1159 और 1195 के समय लिखा गया है। इससे इतना अनुमान लगाया जा सकता कि दसवें, ग्यारवें इस सदी तक महाराष्ट्र में भगवान विट्ठल व भक्त पुंडलिक की पूजा प्रमुखता से शुरू हो गई थी। इससे कुछ समय पहले का भारतवर्ष का एक गाँव जिसका नाम है 'लोहदंड'। लोहदंड नाम के गाँव में एक सुशील ब्राह्मण रहता था। जानुदेव उसका नाम था। उसकी पत्नी बहुत पतिव्रता स्त्री थी। दोनों पति–पत्नी शिव भक्त थे। उनका एक मात्र पुत्र था जिसका नाम पुंडलिक था। यह तो सामान्य नियम है कि सदाचारी माँ–बाप का पुत्र भी सदाचारी हो, परंतु नियम का अपवाद होता है पुंडलिक वही अपवाद था। हीरे की खदान में से कोयला निर्माण होने जैसा था।

पुंडलिक बहुत ही दुराचारी था। बड़े बुजुर्गों से दुर्व्यवहार करना, दिन–दिन भर घर के बाहर रहना, असंगों का संग करना। अभक्ष्य भक्षण करना जैसे बहुत से दुर्गुण पुंडलिक में थे। माता–पिता ने यह सोचकर कि, विवाह के बाद पुंडलिक अपनी जिम्मेदारियों को समझेगा, विवाह बन्धन पुंडलिक को सही रास्ते पर लायेगा उसकी शादी करवा दी। पर सब व्यर्थ। वह स्त्रीलंपट और हो गया।

वृद्धावस्था में लड़का सेवा करेगा यह जानुदेव की आशा निरर्थक हो गयी। विवाह के बाद स्त्री ही पुंडलिक के चिंतन का विषय हो गया। उसको माता–पिता के रहने से परेशानी और होने लगी वह माता–पिता के मरने का इंतजार करने लगा। वृद्ध माता–पिता को लगा कि कम से कम बहुत तो अपनी सेवा करेगी। परंतु पत्नि को भी पुंडलिक के कहे अनुसार चलना पड़ता था।

काशीयात्रा का प्रसंग

ग्राम लोहदण्ड में भगवान शिव शंकर का मंदिर था। लोहदण्ड भी अपने आप में एक छोटा तीर्थ क्षेत्र था। एक दिन काशीयात्रा को जाने वाले श्रद्धालु यात्रियों का एक जत्था

लोहदण्ड में आया। इस जत्थे मे अनेक लोग थे उसमें कुछ बुर्जुग थे तो कुछ महिलाएं तो कुछ पुरुष थे। उसी में से कुछ जवान लड़के अपने माता पिता को काशी यात्रा के लिए ले जा रहे थे। यह देखकर वृद्ध जानुदेव के मन में भी यह विचार जगा कि ईश्वर पुंडलिक को सद्बुद्धि प्रदान करे और वह हमें मरने से पहले एक बार गंगास्नान करवा दे क्योंकि माता-पिता को काशी यात्रा करवाना, गंगास्नान के लिए ले जाना संतान का कर्तव्य बनता है। इस जत्थे में ऐसे बहुत से भाग्यवान थे जिनको उनके बच्चे काशीयात्रा के लिए ले जा रहे थे।

ग्रामस्थ लोग इस जत्थे के व्यवस्थापन में जुटे हुए थे। पुंडलिक भी व्यवस्था में मदद कर रहा था। जत्थे में शामिल जवानों को देखकर पुंडलिक भी यह सोच रहा था कि ये जवान लोग भी तो काशीयात्रा के बहाने से घूमने फिरने जा रहे हैं। मौजा मजा ले रहे हैं क्यों न हम भी इसमें शामिल होकर काशीयात्रा के लिए निकलें।

इधर माता-पिता के मन में भी यही प्रबल इच्छा हुई थी। पर पुंडलिक से कैसे कहें? परंतु पुंडलिक के घर आते ही जानुदेव मन में धैर्य जुटाकर बोले 'पुंडलिक हमने अभी तक जो भी कर्तव्य कर्म किये हैं। वह ईश्वरार्पण बुद्धि से किये हैं। हमारी आखिरी यह इच्छा है कि मरने से पहले मोक्षदायिनी गंगास्नान करें। अपने माँ-बाप को काशीयात्रा (तीर्थयात्रा) कराना हर पुत्र का कर्तव्य होता है। क्या तुम हमें तीर्थयात्रा के लिए ले चलोगे?' पुंडलिक के मन में मौजमस्ती के लिए तीर्थयात्रा को जाने की इच्छा थी ही परंतु अगर सिर्फ पति-पत्नि जायेंगे तो लोग भला बुरा कह सकते हैं। इससे अच्छा कि बूढ़ा बुढ़िया को साथ लेकर चलते हैं। दोनों काम हो जायेंगे। यह सोचकर पुंडलिक गुस्से से बोला कि 'तुम दोनों के प्रति हमारे कर्तव्य तो तुम्हारे बुढ़ापे तक चलते रहेंगे, जाने कब इनसे मुक्ति मिलेगी? ठीक है ले चलूंगा तुम लोगों को तीर्थ स्नान के लिए, तैयारी करो।'

पुंडलिक की बात सुनकर जानुदेव खुश होकर बोले की 'चलो गुस्से से ही सही तैयार तो हुआ हमें ले जाने के लिए' इस तरह से पुंडलिक, उसकी पत्नी, माता पिता चारों जत्थे के साथ काशीयात्रा के लिए तैयार हुए।

अगले ही दिन जत्थे ने अपनी यात्रा शुरू की। पुंडलिक भी अपने माता-पिता के साथ चल पड़ा। जानुदेव और पत्नि बूढ़े हो चुके थे वह चलते-चलते पीछे रह जाते थे तो पुंडलिक उनको गुस्से से डांटता फटकारता। ऐसे ही एक बार वह चारों पीछे रह गये थे तो पुंडलिक की पत्नि बोली कि-

'जी सुन लिया, मुकाम का ठिकाणा कितनी दूर है यहाँ से।'

'होगा चार पाँच मील, क्यों क्या हुआ?' पुंडलिक बोला।

'मैं थक गई हूँ। एक कदम भी उठाने की क्षमता अब मुझ में नहीं।'

'तो तुम मेरे कन्धे पर बैठ जाओ, यहाँ कोई नहीं है देखने के लिए' पुंडलिक ने कहा।

'और सास–ससुरजी पीछे रह जायेंगे उनका क्या? पत्नि ने कहा।

पुंडलिक ने कहा 'रुक जाओ उनकी भी व्यवस्था कर देता हूँ' इतना कहकर पुंडलिक ने दो लम्बी रस्सियाँ ली और एक माँ के गले में और एक बाप के गले में डालकर दोनों रस्सीयाँ अपने हाथ में ले ली। पत्नि को कांधे पर बिठाकर पुंडलिक तीर्थयात्रा के लिए चल पड़ा।

सात्विक वृत्ति के माँ–बाप की कोख से यह दुराचारी पुत्र पैदा हुआ था। नियति यह घिनौना खेल हमारे साथ क्यों खेल रही है? हमसे ऐसा क्या अपराध हुआ है? जिसका दण्ड हमें भुगतना पड़ रहा है। यह चलते हुए जानुदेव मन में सोच रहे थे।

इधर पुंडलिक का सारा ध्यान कांधे पर बैठी पत्नि के साथ लगा हुआ था। बातों में वह रास्ता भूल गया और वाराणसी के दक्षिण में स्थित श्री कुक्कुटस्वामी के आश्रम में भटकते हुए पहुँच गया। नियति भी किस के साथ कौन सा खेल खेलेगी यह कोई नहीं बता सकता। पुंडलिक के साथ भी शायद कुछ ऐसा ही खेल, खेल रही थी। उसे सही रास्ते पर लाने के लिए उसका रास्ता भुलाकर उसे कुक्कुटस्वामी के आश्रम पहुँचा दिया।

श्री कुक्कुटस्वामी का आश्रम नितांत सुन्दर स्वर्ग की तरह रमणीय था। आश्रम के बगल से एक झी शांत स्वर में गीत गाती हुई बह रही थी। सामने ही एक स्वच्छ सा तालाब था। जिसमें कमल के फूल थे। जिनके ऊपर भौंरे गुंजारव कर रहे थे। आश्रम में लगी तरह–तरह की फूल के पेड़ों पर असख्य मधुमक्खियों की आवन–जावन हो रही थी। बहुत से पेड़ों पर पंछियों की चहल–पहल थी। मोर नाचते थे ऐसे दिव्य आश्रम में कुक्कुटस्वामी का बाग था।

कुक्कुटस्वामी सन्ध्यापूजा समाप्त करके अपनी कुटिया से जैसे ही बाहर निकले सामने से गुजरने वाले पुंडलिक ने उनसे पूछा, 'महाराज क्या आप हमें काशी का रास्ता बता सकते हैं? पत्नि उनकी कांधे पर थी और माँ–बाप के गले में डोरी।

सामने का नजारा देखते हुए तेजस्वी कुक्कुटस्वामी ने कहा कि 'हे पांथस्थ काशी का रास्ता मुझे पता होने का कोई कारण नहीं, क्योंकि मैं कभी तीर्थयात्रा को नहीं जाता। मेरे लिए समस्त तीर्थ मेरे घर में मेरे माता–पिता के रूप में मौजूद हैं। वही मेरे शिव हैं वही मेरी पार्वती हैं। उन्हीं के चरणों में गंगा यमुनादी पवित्र नदियों का वास है इसलिए मुझे तीर्थयात्रा करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। इतना कहकर कुक्कुटस्वामी अपने काम में लग गये।

पुंडलिक स्वामी जी के वचन सुनकर बहुत शर्मिन्दा हो गया। पत्नि को नीचे उतारकर माँ–बाप के गले में से रस्सी हटा दी। उनको बाजू में खड़े नीम के पेड़ की छाया में बिठा दिया। पुंडलिक की पत्नि ने साथ लाली सामग्री भोजन सब को खिला दिया। थके–हारे माँ बाप जल्दी ही नींद की आगोश में चले गये। पत्नि भी सो गई। ठीक उसी समय पुंडलिक जाग रहा था। कुक्कुटस्वामी से हुए वार्तालाप ने उसकी आँखें खोल दी थीं। इस ब्रह्माण्ड को निर्माण करने वाले शिव शक्ति है तो इस पिन्ड को निर्माण करने वाले कौन है? क्या उनमें शिवपार्वती नहीं?

पुंडलिक गहन आत्म चिंतन में खो गया। सकल तीर्थ जिनके चरणों में वास करते हैं। उन माँ बाप के साथ ऐसा अभद्र व्यवहार? नहीं, मैंने यह बहुत गलत किया है। यह जघन्य अपराध है। दिन भरा थका होने के बावजूद भी उसको नींद नहीं आ रही थी। वह सामने कुक्कुटस्वामी के कुटिया की तरफ देख रहा था जिसमें कुक्कुटस्वामी अपने माता–पिता की चरण सेवा कर रहे थे।

यह दृश्य पुंडलिक को बड़ा विलोकनीय लगा। दोपहर के भोजन के बाद स्वामी जी माता–पिता को पुराण पढ़कर सुनाते थे। रात्रि में भी कुक्कुटस्वामी माता–पिता के चरण दबा कर उन्हें सुला देते थे और बाद में वह सो जाते थे। उनका यह सेवाव्रत देखकर पुंडलिक मन ही मन बहुत शर्मिन्दा हो गया। सारी रात वह अस्वस्थता से बैठा रहा।

भोर के समय सृष्टी ने तरोताजा बाना अपना लिया था। पंछी अपने हल्के से मधुर स्वर में किलबिल करने लगे थे। बगल से बहने वाला झरना मानो राग भूप गाकर सारे आश्रम को जगाने की कोशिश कर रहा हो। मंद–मंद बहने वाली वायु फूलों को स्पर्श कर सुगंधित हो रही थी और वह फूलों का सुगंधित संदेश भौरों तक पहुँचा रही थी। इसी मंगल समय में तीन तेजस्वी महिलाएँ कुक्कुटस्वामी के आश्रम में प्रकट हो गयीं। तीनों का तेज अलौकिक था। फूलों सी कोमल सुकुमारियों में से एक ने स्वामीजी के आश्रम में झाडू लगायी। दूसरी ने आंगन को गोबर से पोत दिया।

क्रमशः

■■■

''तुम्हारे रोने-चिल्लाने से प्रारब्ध का दुःख भोग मिट नहीं जायगा और बड़ी भारी चाह तथा चिन्ता करने से भोग-सुख मिल नहीं जायगा; पर यदि तुम दुःख में सुख तथा लाभ-बुद्धि कर लोगे और सुख में दुःख तथा हानि-बुद्धि कर लोगे, जो यथार्थ है तो तुम्हें सांसारिक दुःखों की प्राप्ति में उद्वेग या क्लेश नहीं होगा और सुखों की स्पृहा या अभिलाषा नहीं होगी। अपने-आप आने पर तुम दोनों में ही निर्विकार और प्रसन्न रहोगे।''

योगीराज महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी का 101वाँ जन्मोत्सव

संजीव कौशल, सहारनपुर

योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के श्री चरणों में आकर करोड़ों–करोड़ों लोगों ने अपने भाग्य को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से कृपा प्रसाद को प्राप्त कर अपने जीवन को धन्य किया। इसी श्रृंखला में योगीराज प्रभु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, जिन्होंने जिला पानीपत के ग्राम अलुपुर में विजयादशमी को जन्म लेकर अलुपुर भूमि को ही नहीं बल्कि पूरे संसार को योगमार्ग बताकर, अपने संस्कारी बच्चों को योग के शिखर पर स्थित किया है। उनकी साधना एवं भीषण तपस्या के प्रभाव से आज सामान्य ग्राम अलुपुर, धरा अलुपुर न रहकर पवित्र–पावन 'अलुपुर धाम' बन गया है। प्रतिवर्ष उनके बच्चों द्वारा जन्मोत्सव को बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है।

प्रभु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के श्री चरणों की रज एवं प्रिय शिष्यों में आचार्य श्री अवनीश भटनागर जी ने गुरु–कृपा से प्रसाद को प्राप्त कर अपने गुरुदेव के द्वारा दिये गये आदेशों का पालन करते हुए योग एवं कार्यक्रम को करते हुए जनपद–सहारनपुर में प्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के संस्कारी बच्चों तक गुरु–प्रसाद पहुँचाने एवं योग मार्ग पर बच्चों को चलाने हेतु निरन्तर दैवी कार्यों को आगे बढ़ाते हुए जीवों की सेवा कर रहे हैं।

आचार्य श्री अवनीश जी की गुरुचरणों में अनन्य निष्ठा, सेवा कार्य एवं प्रभु श्री चन्द्रमोहन जी की कृपा से वर्ष 2009 में उनके जन्म शताब्दी के शुभ अवसर पर जनपद–सहारनपुर में तीन दिवसीय योग कार्यक्रम का आयोजन किया गया। कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में 'सवाई धाम' से आचार्य डा. दासलाल जी महाराज एवं अन्य जनपदों के योगाचार्यों को भी आमन्त्रित किया गया था।

गत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी सद्‌गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी का 101 वाँ जन्मोत्सव श्री सिद्धयोग शक्ति संचार मन्दिर के तत्वावधान में दिनांक 17–10–10 को आयोजित किया गया। महाप्रभु श्री रामलाल जी एवं सद्‌गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी के दिव्य भवन को सुगन्धित फूलों से सजाया गया। दरबार की अनुपम छटा से दिव्य वातावरण एवं आध्यात्मिक ऊर्जा से उपस्थित सभी संस्कारी बच्चों ने दिव्य आनन्द की अनुभूति प्राप्त की।

आचार्य श्री अवनीश जी का हमेशा यही प्रयास रहा कि सद्‌गुरुदेव का कृपा प्रसाद उनके सभी संस्कारी बच्चों को प्राप्त हो। इसके लिए उन्होंने गुरुदेव के द्वारा बताये गये अमर

जीवन तत्व साधन, गुरुमंत्र का अधिक से अधिक जप एवं *गुरुदेव द्वारा लिखित पुस्तकें जो आज शास्त्र बन गयी हैं के स्वाध्याय करने हेतु प्रेरित किया। जिन्होंने भी उनके द्वारा बताये गये मार्गों का, आदेशों का जितने प्रतिशत भी अपने जीवन में पालन किया है। उनके जीवन में उतने ही प्रतिशत अमूल्य दिव्यता की चमक आयी है। जिसका अनुभव स्वयं साधकों द्वारा किया गया है।*

प्रभु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के 101 वें जन्मोत्सव पर्व पर उनके बच्चों द्वारा 101 दीप प्रज्वलित कर आरती वन्दन किया। उपस्थित बच्चों के द्वारा भजनों के माध्यम से प्रभुजी के श्री चरणों में अपने श्रद्धासुमन अर्पित किये एवं योग के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए अपने अनुभव बताये। साधकों के द्वारा आचार्य श्री अवनीश जी को अपनी दिव्य अनुभूति बताई कि *महाप्रभु श्री रामलाल जी एवं योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने साक्षात् दर्शन देकर उनके जीवन की रक्षा की एवं शारीरिक कष्टों से मुक्ति दिलाई। यह बताते हुए उनकी आँखों से अश्रुधारा बह रही थी और कह रहे थे कि 'प्रभु आप कितने दयालु हो कि आप रक्षा हेतु स्वयं प्रकट हुए। आपकी कृपा से मेरा जीवन धन्य हो गया।'*

कार्यक्रम के अन्त में सद्गुरुदेव महाराज की आरती उपस्थित जन मानस द्वारा की गई। प्रसाद एवं सूक्ष्म जलपान के उपरान्त आचार्य श्री अवनीश जी द्वारा सभी को जन्मोत्सव की बधाई देते हुए सभी की मंगल कामना हेतु अर्जी श्री गुरुदेव के श्री चरणों में लगाई।

''मनुष्य का शरीर दुःखों से सर्वथा छुटकारा दिलाने के लिए भगवान् ने कृपापूर्वक दिया है, इसे यदि नये-नये भयानक दुःखों की प्राप्ति कराने वाली विषयासक्ति, विषयसेवा और भगवान् की विमुखता में ही बिता दिया तो इससे बड़ी मूर्खता एवं हानि और क्या होगी? क्योंकि ऐसा करने पर भगवत्कृपा की अवहेलना होती है और मानव-जीवन के दुर्लभ सुअवसर का दुरुपयोग होता है।''

स्वधर्म में मरना श्रेयस्कर

जय नारायण राय

श्री कृष्ण भगवान अर्जुन को स्वधर्म के आधार पर युद्ध करने का आदेश देते हैं। अर्जुन के लिए युद्ध ही स्वभाव प्राप्त या सहज कर्म है, वही उसका स्वधर्म है। यदि कोई व्यक्ति शिक्षक है, तो उसका स्वभाव प्राप्त कर्म है अध्ययन–अध्यापन। व्यापारी का सहज कर्म है व्यापार। श्रमिक का सहज कर्म है शारीरिक श्रम। हर प्रकार का कर्म करने वाला व्यक्ति लोक संग्रह हेतु कर्म कर सकता है। अपने–अपने सहज कर्म से न डिगते हुए मनुष्य उसे लोक संग्रहार्थ कैसे बनाए, इसका उपाय नीचे श्लोक से स्पष्ट है :

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः।।

अर्थात् सभी कर्मो को मुझमें समर्पित करते हुए, चित्त को आत्मा में केन्द्रित कर आशारहित, ममतारहित और सन्तापरहित हो युद्ध कर।

उपरोक्त श्लोक में पाँच लक्षण बताये गये हैं, जिनसे युक्त होने पर कर्म लोक संग्रहार्थ बन जाता है।

1. सब कर्मो का सन्यास परमात्मा में करना– कर्त्ता अपने सम्पूर्ण कर्मो को परमात्मा को इस भाव से समर्पित करे कि इससे प्राप्त होने वाला फल मन ही मन प्रभु को अर्पित है।

2. चित्त को आत्मा में केन्द्रित करना– यदि साधक की आसक्ति देह में बनी रहती है तो यह आसक्ति बन्धनकारी है। साधक का सम्पूर्ण कर्म बिना आसक्ति प्रभु को समर्पित होना चाहिए।

3. आशा रहित– हमारा चित्त आशा के कारण मन से चिपकता है। भविष्य का अधिक विचार ईश्वर के प्रति हमारे समर्पण को शिथिल करता है। निराशा (हताशा) और आशा में अन्तर है। निराशा में देह और मन दोनों अवसन्न हो जाते हैं, दोनों की क्रियाशीलता बाधित हो जाती है, जबकि आशा में मन क्रियाशील रहता है पर देह अवसन्न रहती है। अतः निराशा और आशा का शिकार न होने से बचना है।

4. ममता रहित– यह भाव चित्त को देह से चिपकने से बचायेगा। सारे ममत्व की जड़ है देह। इसलिए श्री कृष्ण भगवान ममतारहित होने का उपदेश देते हैं।

5. सन्ताप रहित– 'क्षोभ' और 'आवेश, ज्वर के दो लक्षण हैं और दोनों ही साधक के कर्म को निस्तेज बना देते हैं। दोनों ही बुद्धि की चंचलता सूचित करते हैं। ज्वर की ऐसी

स्थिति में बुद्धि उचित अनुचित का विचार नहीं कर पाती। यदि साधक आवेश और क्षोभ से रहित हो, भूत और भविष्य की चिन्ता छोड़ वर्तमान के कर्म में भगवत्समर्पित भाव से अपने चित्त को निविष्ट करे, तो वह साधक देह और मन की आसक्ति से ऊपर उठ आत्मतत्व में लीन होगा और तब साधक सही अर्थों में अपने सम्पूर्ण कर्मों को फल सहित सन्यास परमात्मा में करने में समर्थ होगा।

श्री कृष्ण भगवान ने गीता के तीसरे अध्याय के श्लोक 31 से 34 में उपरोक्त श्लोक के निहित अर्थ के सन्दर्भ में अर्जुन को परमात्मा में श्रद्धा और अनसूया (दोषदृष्टि न रखना) वृत्ति रखने का उपदेश देते हैं तथा यह बतलाते है कि जो साधक परमात्मा के कथन में दोष निकालते है, वे सभी ज्ञानो में भ्रान्त है, अविवेकी है और फलस्वरूप वे विनाश को प्राप्त होते है। अर्जुन श्री कृष्ण भगवान को एक परम आत्मीय और अत्यन्त स्नेही सखा के रूप में मानता है किंतु अर्जुन के भीतर एक ऐसी वृत्ति काम कर रही है, जो श्री कृष्ण भगवान के वचनों के प्रति पूरी तरह से आस्था नहीं जमने देती। अर्जुन के मनोवृत्ति को अन्तार्यामी श्री कृष्ण भगवान भांप कर कहते है कि ज्ञानी पुरुष भी अपने निज स्वभाव के अनुरूप चेष्टा करता है। कोई अपने को बलपूर्वक किसी काम के करने से रोकना चाहे तो नहीं कर पाता, क्योंकि स्वभाव आड़े आता है। श्री कृष्ण भगवान ने निग्रह की प्रयोजनीयता बतायी। जो साधक दृढ़प्रतिज्ञ है और स्वभाव के बली होने पर भी उस पर हावी होने का संकल्प करते है, उनके लिए संकल्प फलप्रसू होता है बशर्ते राग और द्वेष पर विजय पा ले।

■■■

तुम किसी की सहायता नहीं कर सकते, तुम्हें केवल सेवा का अधिकार है। प्रभु की संतान की, यदि भाग्यवान हो तो, स्वयं प्रभु की ही सेवा करो। यदि ईश्वर के अनुग्रह से उसकी किसी संतान की सेवा कर सकोगे तो तुम धन्य हो जाओगे। अपने को ही बहुत बड़ा मत समझो। तुम धन्य हो, क्योंकि सेवा करने का तुम्हें अवसर मिला है, और दूसरों को नहीं मिला। यह सेवा तुम्हारे लिए पूजा तुल्य है।

-स्वामी विवेकानन्द

ॐ श्री महाप्रभु रामलाल चालीसा

कलिकाल से ग्रसित कलि के लोगों को योग पथ पर आरूढ़ करने हेतु महाप्रभु ने अवतार लिया। प्रभु के सानिध्य में किसी भी प्रकार से आने वाला योगारुढ़ हुआ भी है। जिसने जिस गहराई तक जाकर डुबकी लगायी, उस पात्रता तक व्यक्ति योग और योगीराज को जान पाया। योग की परम्परा को महाप्रभु अपने अभिन्न शिष्य योगीराज श्री चन्दमोहन जी महाराज तथा अन्य योगीराजों के द्वारा उद्धार कराने का बीड़ा सौंपा। जिससे कलि के पीड़ित जीवों का भी कल्याण हो सके। ऐसे कराल कलिकाल के हम सब जीवों द्वारा सद्गुरु द्वारा बताये गये, नियमों परम्पराओं का यथोचित पालन नहीं हो पा रहा है। जिसकी दुर्गति हम सब झेल रहे हैं। सूरदास ने भी उस परमात्मा के बारे में कहा कि – 'सब विधि अगम विचारि हैं, ताते सूर सगुन लीला पद गावै'। यही गायन की साधना ठीक लगती है। इसी गायन का परिणाम महाप्रभु की चालीसा है। इसी का गायन कर हम सबका उद्धार होगा।

चालीसा

दोहा–

चिदानंद पावन परम, रामलाल सुखधाम।
जग तारण कारण प्रभु, कलियुग के विश्राम।।
जिनकी चरण सरोज रज, करे पाप का नाश।
तिनके चरण सरोज की निशिदिन सबको आश।।

चौपाई–

श्री प्रभु रामलाल हितकारी, श्री प्रभु रामलाल पापारी।
श्री प्रभु रामलाल गुणधामा, श्री प्रभु रामलाल शुभ नामा।
श्री प्रभु रामलाल भगवंता, श्री प्रभु रामलाल बड़संता।
श्री प्रभु रामलाल सर्वेशा, श्री प्रभु राम लाल अखिलेशा।
श्री प्रभु रामलाल अविनाशी, श्री प्रभु रामलाल सुभराशी।
श्री प्रभु रामलाल जगकरता, श्री रामलाल दु:ख हरता।
श्री प्रभु रामलाल योगीश्वर, श्री प्रभु रामलाल जगदीश्वर।
श्री प्रभु रामलाल धर्मात्मा, श्री प्रभु रामलाल परमात्मा।

दोहा–

योगरूप योगीपरम योगारूढ़ अनंत।
रामलाल त्रिभुवन पते संत उदार महंत।।
श्री प्रभुवर कलिमल हरण सकल चराचर नाथ।
तम्हरे चरन में प्रेम से झुके भक्त का माथ।।

चौपाई --

योगिराज विश्व के चालक, योगिराज जगत के पालक।
योगिराज दया के सागर, योगिराज सकल गुण आगर।।
योगिराज मुनीश्वर प्यारे, योगिराज जगत से न्यारे।
योगिराज पापतम हारी, योगिराज कोटि रविधारी।।
योगिराज कलि के उजियारे, योगिराज तम नाशन हारे।
योगिराज योग के करता, योगिराज सकल अघहरता।
योगिराज दु:ख हरण दयालु योगिराज सुख शंभुकृपालु।।
योगिराज निर्मल अकलंका योगिराज साकार अशंका।

दोहा–

श्री प्रभु ब्राह्मण रवी मनुजन के हितकारि।
निराकार साकार प्रभु निर्गुण सगुण विचारि।।
जड़ चेतन में आपकी दिव्य शक्ति वर साथ।
सब जन मिल प्रेम से निशिदिन तव गुण गाय।।

चौपाई–

जय जय नाथ विश्व के भूपा अक्षर चतुर अपार अनुपा
जय जय नाथ त्रिदोषन हंता, परम सुजान सुसेव्य सुसंता
जय जय नाथ अगुण गुण दाना, भक्तन भयहारी भगवाना
जय जय नाथ योग के प्यारे, शांति रूप दु:ख भंजन हारे
जय जय नाथ सुखन की राशी, अजर अमर योगी अविनाशी
जय जय नाथ दीन के भ्राता सकल चराचर के पितुमाता
जय जय नाथ सकल गुण धामा, सकल कला निधि पूरनकामा
जय जय नाथ विश्व मन हरता, संहरता पालक वर करता

दोहा–

चारों युग में आपके है प्रभु अक्षर चार।
चार पदारथ देत है जानत है संसार।।
चारों युग में आपकी महिमा ऋषि मुनिगाय।
चारों अक्षर जपत हैं चारों दिशि सुखपाय।।

चौपाई–

जो जन शरण आपके आवे, यम का त्रास न उसे डरावे।
शरण आपकी सुन्दर शया, नाम आपका चतुर खेवैया।
जो श्रद्धा करते नरनारी, भवतर जाते परम सुखारी।
कल्पवृक्ष समनाम तिहारो, मनवांछित सुख देवानिहारो
सकल सुखों के दाता स्वामी, दीनबंधु प्रभु अंतर्यामी
दुखनाशन सबके पितु माता, अघनाशन सब सुख के दाता
देवी देव आपको ध्यावे, तव चरनन में शीश झुकावे
श्री प्रभु रामलाल योगिश्वर, जग तारण कारण जगदीश्वर

दोहा–

जो सुख लोकालोक के सभी आपके हाथ।
एक दया की दृष्टि से कर दो नाथ सनाथ।।
नहि विद्या नहि बाहुबल नहि धन बल कुछ मोर।
हम भक्त को चाहिए एक अनुग्रह तोर।।

चौपाई–

योग निद्धि से सब सुख देते, योग निद्धि से दुःख हर लेते
योग निद्धि से पार उतारे, योग निधि से कलिमल हारे
योग निद्धि से व्याधी हरते, योग निधि से झोली भरते
योग निधि से बल के दाता, योग निद्धि से भय के त्राता
योग निधि से पाप विनाशी, योग निद्धि से दे सुखराशी
योग निधि से अमर बनाते, योग निधि से मोक्ष दिलाते
योग निधि से शुद्ध बनावे, योग निधि से मुक्ति दिलावे
योग निधि से हरे त्रिताप, योग निधि से हरते पाप

दोहा–

योग निधि से करत हैं भक्त जनन के काज।
योग निधि से देत है प्रभु त्रिभुवन का राज।।
योग निधि से करत है योगिराज उपकार।
योग निधि से करत है बंद नरक के द्वार।।

चौपाई–

जो भी शरण आपके आया, सो नर परम अमित सुख पाया।
जिसने नाम प्रभु का लीना, उसको परम धाम प्रभु दीना
कोई न गया द्वार से खाली, हे प्रभु दीन दु:खी के पाली
कृपा करो मुझ पर अब स्वामी, कष्ट हरो प्रभु अन्तर्यामी
क्षमा करो प्रभु अवगुण मेरो, गुणानुवाद गाँउ मैं तेरो
दु:ख भोगी तव शरण में आया, मुझको कलिमल अधिक सताया
और ठौर कोऊ नजर न आवे, एक द्वार तुम्हारो दरसावे
कोई न जाये गंग पियासा, मैं हूँ नाथ आप का दासा

दोहा–

नैनों से आँसू बहे दु:खसागर दु:ख लेत।
तात, मात, पितु बाहुबल सुधि सबकी है लेत।।
हे प्रभु डूबा जात हूँ भव सागर के बीच।
साँस लेन नहिं देत है यह माया की कीच।।

चौपाई–

जिन पर नाथ अनुग्रह तोरा, मुक्त वही यह निश्चय मोरा
चन्द्रमोहन पर कृपा तिहारी, प्रभु ने दी इनको सरदारी
आपने कल्पवृक्ष यह लाया, इनको निज आसन बैठाया
दिव्य ज्योति प्रभु इनको दीनी, पूरण दया आप पर कीनी
राज योग का आपको दीना, पर पे अनुग्रह मोहन ने कीना
तब दरसन की जिनकी आशा, देखे मोहन न जाय निराशा
जो प्रभु रामलाल के प्यारे आये चन्द्रमोहन के द्वारे
मन में जो कुछ लालसा लावे, सब कुछ चन्द्रमोहन से पावे

दोहा—

कलियुग के तारक प्रभु रामलाल अवतार।
चन्द्रमोहन को दे दिये श्री प्रभु ने अधिकार।।
प्रभु के सदृश चन्द्र है जान लेहु सब रीत।
प्रभु प्रसन्न होंगे सदा गाओ मोहन के गीत।।

चौपाई—

योगिराज मोहन प्रभु रूपा, एक रूप जिमि जल औ कूपा
स्वर्ण हार में स्वर्ण समाया, तिमि प्रभु चन्द्रमोहन में आया
प्रभु मोहन में भेद न ोयी, प्रभु कृपा ते सब सिद्धि होयी
प्रभु की दया मोहन । पायी, निज स्वरूप दीनी प्रभु लायी
अति सूक्ष्म बुद्धि ो पाये, उनको परम अभेद दिखाये
भेद भाव जो नर अपनाते, वे प्यासे गंगा से न जाते
पारब्रह्म प्रभु अन्तर्यामी, चन्द्र में देखो सबके स्वामी
जैसे गोपों ने कृष्ण न जाने, समय चूक पाछे पछिताने

दोहा—

पुत्र सदा जानत रहे नंद यशोदा मात।
अर्जुन जाने मित्रवर पारब्रह्म नहीं ज्ञात।।
वैसे ही प्रभु चन्द्रमोहन जी नहि निज को प्रकटाय।
भक्तन को यह चाहिए समय न वृथा गवाय।।

चौपाई—

प्रभु का रूप अलख का जानो, कहा हमार सत्य कर मानो
तुलसीदास कर दृढ़ विश्वास, राम ते अधिक राम के दास
प्रभु की ज्योति मोहन में प्यारी, सत्य जान लो सब नर नारी
गण्डाराम दुलारे प्यारे, देवीदास नैन उजियारे
एक ज्योति दोनों में आयी, सत्य कहूँ मिथ्या नहीं रायी
भक्ति अनन्य जो नर अपनावे, तापर विपति कबहु नहि आवे
रामलाल से 'रा' अपनावो चन्द्रमोहन से 'म' को पावो,

दोहा—

रा औ मा दोऊ मिले, वस जा तात वराय।

दोनों का अक्षर प्रथम करता पूरण काय ।।
इस कारन भक्तो सुनो एक जान लो रूप।
रामलाल और चन्द्रमोहन जी एक है परम अनूप ।।

चौपाई–

श्री प्रभुरामलाल बलिहारी, श्री प्रभु चन्द्रमोहन पर वारो
श्री प्रभु रामलाल वर स्वामी, श्री प्रभु चन्द्रमोहन शुभनामी
श्री प्रभु रामलाल जगकरता, श्री प्रभु चन्द्रमोहन दु:ख हरता
श्री प्रभु रामलाल सर्वेशा, श्री प्रभु चन्द्रमोहन अखिलेशा
श्री प्रभु रामलाल भयहारी, श्री प्रभु चन्द्रमोहन पापारी
श्री प्रभुरामलाल पितुमाता, श्री प्रभु चन्द्रमोहन भय त्राता
श्री प्रभु रामलाल भगवंता, श्री प्रभु चन्द्रमोहन वर संता
श्री प्रभु रामलाल रखवारे, श्री प्रभु चन्द्रमोहन उजियारे

दोहा–

दोनों एक स्वरूप हो मोहन और प्रभु राम।
भक्तों के पूरण करो, दास जानकर काम ।।
जो नर श्रद्धा प्रेम से यह चालीसा गावत।
ऋद्धि सिद्धि पावत भव सागर तर जात ।।

चौपाई–

जो चालीसा प्रतिदिन गावें, वे मुह मांगे सब वर पावे
पुत्रहीन पुत्रन मुख धोवे, रहे प्रसन्न कबहुँ नहि रोवे
निर्धन प्राणी धन को पाता, जो निशिदिन चालीसा गाता
यह चालीसा रोग मिटावें, जो गावे सो अति बल पावे
यह चालीसा सुंदर प्यारा, ऋषि सिद्धि का यह भण्डारा
जो चालीसा गावत नारी, कबहु न विधवा होय सुखारी
अटल सुहाग होत है तिनका, यह चालीसा प्यारा जिनका
यह चालीसा विद्या देवे, मूरखता को यह हर लेवे

दोहा–

यह चालीसा प्रेम से जो गावे निष्काम। आवागमन मिटत है उस नर का प्रभु राम ।।
चन्द्रमोहन के चरण में साधक शीश झुकाय। कविता की लयता मधुर द्वारे आन बजाय ।।

अर्जुन के विषाद का मूल कारण

जनक कुलश्रेष्ठ, ग्वालियर

जगत में दो पक्ष होते हैं। एक वह पक्ष जो अपने राष्ट्र का विस्तार करता है। वह अपनी सम्पत्ति का विस्तार हत्या, लूट, स्त्री अपहरण, अग्नि, दाह आदि जैसे जघन्य पाप करके, करता है। इस कारण उसे अपने शत्रु के प्रबल हो जाने का सदा भय रहता है। उसे चिंता रहती है कि यदि उसका शत्रु प्रबल हो गया तो उसके अन्याय से विस्तारित राज्य को वह छीन लेगा। ऐसे व्यक्ति को धृतराष्ट्र कहते हैं। अर्थात धृत+राष्ट्र, जो दूसरों के राष्ट्रों को बलात छीन लेता है।

इसके विपरीत वे दूसरे लोग होते हैं, जिनका राष्ट्र छीन लिया जाता है। ऐसे व्यक्ति सदा निश्चिन्त रहते हैं, क्योंकि उनके पास धन ही नहीं है, जिसे रख–रखाव की उनको चिन्ता करनी हो। इस दूसरे पक्ष वालों को हृतराष्ट्र वादी कहते हैं।

महाभारत युद्ध के पूर्व से ही दो पक्ष थे। एक पक्ष में कौरवों का राजा धृतराष्ट्र था और दूसरे पक्ष में पाण्डव थे, जिनका राष्ट्र छल से छीन लिया था। कौरव संख्या में 100 थे और पाण्डव संख्या में मात्र 5 ही थे। इसके साथ पाण्डव धर्मानुसारी थे। धर्म की रक्षा में ही अपने आपको विपत्तियों में डाल दिया था। द्यूत क्रीड़ा में छल से हार कर उनको 12 वर्षों का वनवास और 1 वर्ष के अज्ञात वास में रहकर अपना जीवन व्यतीत करना पड़ा था।

पाण्डव यद्यपि संख्या में कम थे तथा उनका सैन्य बल भी कौरवों की अपेक्षा कम था फिर भी धृतराष्ट्र को सदा चिन्ता बनी रहती थी कि यदि युद्ध हुआ तो पाण्डवों के द्वारा मेरे सारे पुत्र मारे जायेंगें। क्योंकि उसे ज्ञात था कि उसके पुत्र आततायी हैं। उन्होंने पाण्डवों को नष्ट करने के लिए अनेक उपाय किये थे फिर भी वे बचते रहे। इसके अतिरिक्त धृतराष्ट्र यह भी जानता था कि पाण्डव देवताओं के वरदानों से उत्पन्न हुए हैं। युधिष्ठिर धर्मराज, भीम वायु देवता, अर्जुन इन्द्र देवता और नकुल तथा सहदेव अश्विनीकुमारों के पुत्र थे। यदि युद्ध हुआ तो उपरोक्त देवता उनकी सहायता अवश्य करेंगे। वैसे भी पाण्डव कौरवों की अपेक्षा बलवान हैं। गंधर्व राज चित्रसेन के युद्ध में दुर्योधन को बन्दी बनाए जाने पर पाण्डवों ने ही उसे गंधर्वों के चंगुल से मुक्त कराया था मत्स्य देश के राजा विराट के युद्ध में केवल अकेले अर्जुन ने ही कौरवों की सारी सेना को पलायन करने पर विवश कर दिया था। उपरोक्त कारणों से धृतराष्ट्र किसी प्रकार से युद्ध को टालना चाहता था। यही उसकी चिन्ता थी।

जिसके पास पाशविक बल अधिक होता है वह धृतराष्ट्र अन्धा भी होता है वह

अधिक धन–सम्पत्ति और बल के कारण अन्धा हुआ करता है। उसे पाकर वह न्याय और अन्याय कुछ भी नहीं देखता है। भले ही वह स्थूल शरीर से अन्धा न हो फिर भी वह मदान्ध होता है। अन्धे के अनुयायी भी अन्धे ही अन्धे ही होते हैं। धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी ने अपनी आँखों पर पट्टी बांध रखी थी। वह चाहती हुई भी अपने अन्धे पति की पतिव्रता स्त्री होने के कारण उसका विरोध नहीं करती थी। यदि वह तनिक भी विरोध करती और अपने पुत्र दुर्योधन को डांटती तो कौरवों का विनाश कदापि न होता। अन्धे धृतराष्ट्र के अधिकांश पुत्रों के नाम 'दु' से प्रारम्भ होते हैं, जो दुष्टता का प्रतीक है। जैसे दुर्योधन, दुःशासन, दुस्सह, दुश्श, दुर्मर्षण, दुष्कर्ण, दुर्विगाह, दुर्विरोचन, दुराधन आदि तथा बहिन दुःशाका। इस कारण पुत्र भी मदान्ध थे।

जब धृतराष्ट्र को पता लगा कि द्रुपद ने यज्ञ से उत्पन्न अयोनिजा पुत्री पांचाली का विवाह पाण्डवों के साथ कर दिया है तब उसने सभा बुलाई और समस्त लोगों के तर्कों को सुना। अन्त में भीष्म पितामह ने कहा कि ज्येष्ठ होने के नाते युधिष्ठिर राज्य का अधिकारी है। इसलिए वंश की सदा–सदा की रक्षा के लिए राज्य को दो बराबर भागों में बांट कर युधिष्ठिर को राजा घोषित किया जाय। फलतः धृतराष्ट्र ने अपने पुत्र मोह के कारण युधिष्ठिर को अत्यन्त दुर्गम प्रदेश खाण्डव–वन का राजा घोषित कर दिया। परंतु पाण्डवों ने श्री कृष्ण की सहायता से अथक परिश्रम करके वहाँ अपनी राजधानी बना ली।

फिर भी धृतराष्ट्र को अपने राज्य की रक्षा और अपने दुष्टात्मा पुत्रों के विनाश की चिंता थी। इसी भय के निवारण के लिए धृतराष्ट्र ने, युद्ध से पूर्व, जब दोनों ओर से युद्ध की तैयारियाँ हो रही थीं, तब पांडवों को युद्ध से विरत होने के लिए, अपने मंत्री संजय को उनके पास इस संदेश के साथ भेजा कि पाण्डव जुए में हारे हुए अपने राज्य की प्राप्ति की माँग को त्याग दें और युद्ध न करें। उद्योग पर्व महाभारत सत्ताइसवां अध्याय के अनुसार संजय ने पाण्डव सभा में जाकर कहा 'पाण्डवनन्दन! आपकी प्रत्येक चेष्टा धर्मानुकूल ही होती रही है तथा वह देखने में भी आ रही है। आपकी धर्मयुक्त चेष्टाएँ लोक में विख्यात तो हैं ही तथा देखने में भी आ रही हैं। यद्यपि यह जीवन अनित्य है तथापि इससे महान सुयश की प्राप्ति हो सकती है। पाण्डवनन्दन! आप जीवन की उस अनित्यता पर दृष्टिपात करें और अपनी कीर्ति को नष्ट न होने दें।

नंचेद् भागं कुरवेऽन्यत्र युद्धात्।
प्रपच्छेरंस्तुभ्यजाते शत्रो।।
भैक्ष्यचर्यागन्धक वृष्टियाराज्ये।
श्रेयोमन्दे न तु युद्धे न राज्यम्।।

अर्थात् हे अजातशत्रो! यदि कौरव युद्ध किए बिना आपको राज्य का भग न दें तो भी

अन्धक और वृष्णि वंशी क्षत्रियों के राज्यों में भीख मांग कर जीवन निर्वाह कर लेना मैं आपके लिए श्रेष्ठ समझता हूँ। परंतु युद्ध करके राज्य लेना उचित नहीं समझता हूँ।

मनुष्य का यह जीवन बहुत थोड़े समय तक रहने वाला है। इसको क्षीण करने वाले महान दोष इसे प्राप्त होते रहते हैं। आप युद्ध रूपी पाप न करिये। वह आपके सुयश के अनुरूप नहीं है। पाण्डुनन्दन! आप क्रोध जनित नरक और हर्ष जनित स्वर्ग इन दोनो लोकों को कभी न जाँय। यदि आप लोगों को राज्य के लिए चिरस्थायी विद्वेष के रूप में युद्ध रूपी पाप कर्म करना ही है तो मैं यही कहूँगा कि आप बहुत वर्षो तक दु:खमय वनवास का ही कष्ट भोगते रहें। वह वनवास ही आपके लिए धर्मरूप होगा। आपकी बुद्धि कभी अधर्म में नहीं लगती है तथा आपने क्रोध में आकर कभी भी पाप कर्म नहीं किया है। जो पाप की जड़ है उस क्रोध की इच्छा कौन करेगा? आपकी दृष्टि में तो क्षमा ही सबसे श्रेष्ठ वस्तु है। ये भोग ही हैं जिनके लिए शान्तनुनन्दन भीष्म तथा पुत्र सहित आचार्य द्रोण की हत्या की जाय। अत: आप वनवास ही ग्रहण कीजिए। अपने कुटुम्ब का वध करके देवयान मार्ग से भ्रष्ट न होइए।'

अर्जुन के मन पर संजय के उक्त प्रवचन का पूरा का पूरा प्रभाव पड़ता हुआ दृष्टिगोचर होता है। जिस युद्ध में दोनो ओर की सेनाएं आमने–सामने युद्ध के लिए तैयार खड़ी थीं, उसी समय अर्जुन ने भगवान से अपना रथ दोनो सेनाओं के मध्य में खड़ा करने के लिए अनुरोध किया ताकि प्रतिपक्ष की सेना के उन वीरों को देख सके। जिनसे उसे युद्ध करना है। श्रीकृष्ण ने रथ को दोनों सेनाओं के मध्य खड़ा कर दिया। तब वह अपने सगे–सम्बन्धियों को देखकर कंपित हो गया। पसीना–पसीना हो गया और कहने लगा कि मुझे राज्य सुख की लालसा नहीं है। अपने प्राणों का मोह छोड़कर आचार्य द्रोण, भीष्म पितामह, पुत्रगण, मामा, श्वसुर, पौत्र तथा साले आदि सभी सगे–सम्बन्धी युद्ध के लिए खड़े हैं। इनकी हत्या करने के उपरान्त यदि मुझे पृथ्वी की अपेक्षा स्वर्ग का भी राज्य मिल जाय तो भी वह मेरे लिए उचित नहीं है। इनकी हत्या करने से तो मुझे पाप ही लगेगा और कुल क्षय होगा। कुलक्षय होने से सनातन धर्म नष्ट हो जायेगा और धर्म के नष्ट हो जाने से सभी पृथ्वी पर अधर्म फैल जायेगा। अधर्म बढ़ने से कुल की स्त्रियाँ दूषित हो जायेंगी। स्त्रियों के दूषित हो जाने से वर्ण संकरो की उत्पत्ति होगी। परिणामत: पितरों को दी जाने वाली पिण्ड, तर्पण आदि क्रियायें समाप्त हो जायेंगी। जिससे हमारे पितरों का पतन हो जायेगा। अपने गुरुजनों की हत्या करने की अपेक्षा तो मैं यही अच्छा समझता हूँ कि भिक्षुक बनकर अपना जीवन निर्वाह किया जाय और युद्ध के परिणाम का भी इतना होते हुए भी यह ज्ञात नहीं है कि हमसे से कौन विजयी होगा? यह कहते हुए अर्जुन विषाद में डूब गया और युद्ध करने से उपरत हो गया।

▣▣▣

अष्टाङ्ग योग

प्रो. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ

माया के कर्मविभाग से मुक्ति पाने के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने कर्मयोग का उपदेश दिया है कि –

न कर्मणामनारम्भात् नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च सन्यासादेव सिद्धिं समधिगच्छति।।
न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैः गुणैः।।
यस्तु इन्द्रियाणि मनसा नियम्य आरभते अर्जन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगं असक्तः सः विशिष्यते।।
यज्ञार्थात कर्मणे अन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थ कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर।।
स्वभावजेन तु कौन्तेय निवद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छति यन्मोहात् करिष्ये अवशोऽपि तत्।।

अर्थात् जब परमात्मा ने जीवलीला की कल्पना की तब उसके प्रकृतिरुपी स्वभाव से अलग–अलग दो स्वभावों का प्रादुर्भाव हुआ जैसा कि श्रुति का कथन है कि –

जीवं कल्पयते पूर्वं ततो भवान् प्रथक्विधान।
वाह्यान् आध्यात्मिकान् चैव यथविद्यः तथास्मृतिः।।

अर्थात् अविद्यामूलक वहिर्मुखी स्वभाव तथा विद्यामूलक आध्यात्मिक स्वभाव। तदनन्तर स्वभावों के अनुकूल स्मृतियों की प्राप्ति हुई। अविद्यामूलक वहिर्मुखी स्वभाव से अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेश तथा अभिनिवेश नामक पंच क्लेशों की उत्पत्ति हुई जिनसे माया के बन्धन में बाँधने वाले कर्माशय रूपी अनुबन्धों की रचना हुई जिन्हें 'कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके' कहा गया। अतः सभी जीवात्मायें अपने–अपने स्वभाव से उत्पन्न अपने ही कर्मो के बन्धन में विवश हैं, क्योंकि अज्ञानवश अपने मिथ्या अहंकार से अवांच्छित कर्मभोग न भोगना चाहें तब भी प्रकृति की वशीभूत उन्हें उसका भुगतान करना अनिवार्य है, क्योंकि परमात्मा की सत्यसंकल्प माया का यह विधान है कि 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतंकर्म शुभाशुभम्' यानि स्वभावतः जीव जो भी पुण्यकर्म अथवा पापकर्म करता है उसे उसका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। अस्मिता क्लेश के प्रभाव में सुख–दुःख की प्रतीति तथा शरीर का

देहाध्यास जीवात्मा को कर्म करने तथा कर्मफल भोगने को विवश कर देता है। हठपूर्वक कर्मेन्द्रियों को रोककर कोई जीव किसी कर्म का आरम्भ न भी करे या सन्यासी की वेशभूषा धारण कर ले तब भी न तो उसे निष्कर्मता कहा जाता है और न संकल्परहित वाली स्थिति प्राप्त होती है, क्योंकि स्थूलशरीर निष्क्रिय होने पर भी सूक्ष्मशरीर से कर्म होना प्रकृति की विवशता है, क्योंकि मन तथा इन्द्रियों के विषयचिन्तनमात्र से कर्म तो होते ही हैं। अतः कोई भी जीव अविद्यामूलक स्वभाव में बिना कर्म के एक क्षण भी नहीं रह सकता। 'अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावात्' अर्थात् भोगवासना की वृत्तियों के कारण जीवात्मा प्रकृति के वशीभूत माया के बन्धन से मुक्त नहीं हो सकती। यदि कर्म के पीछे भोगवासना नहीं है तथा कर्म केवल परमात्मा की प्रसन्नता के लिए प्राणीमात्र के हित में किया जाता है, वह तो निष्कामकर्म रूपी यज्ञ बन्धन का कारण नहीं होता, अन्यथा सभी कर्म जन्ममृत्युरूपी बन्धन तथा अज्ञानमूलक दुःखों का कारण ही होते हैं। अतः मन के द्वारा इन्द्रियों पर संयम रखते हुए अन्तःकरण की शुद्धि के लिए आसक्तिरहित होकर कर्म करता है, वही श्रेष्ठ है तथा वही कर्मयोगी है। जब तक जीव अविद्या से मोहित होकर शरीरबन्धन में है तब तक कर्म से मुक्ति संभव ही नहीं। भगवान श्रीकृष्ण इसकी पुष्टि करते हैं कि –

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माणि अशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागी इत्यभिधीयते।।

अर्थात् देहधारियों के लिए पूर्णरूपेण कर्मों का त्याग संभव नहीं है। अतः वही त्यागी माना जाता है जो अपने मन तथा बुद्धि से कर्मफल की कामना का त्याग कर देता है। यही कर्मयोग है जिसके लिए भगवान स्वयं उपदेश करते हैं कि

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योगः उच्यते।।
कर्मजं बुद्धियुक्ताः हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्ति अनामयम्।।

अर्थात् फलासक्ति त्याग कर जो जीव समाहित चित्त के द्वारा कर्म करते हैं तथा कर्म की सिद्धि अथवा असिद्धि को समान भाव से देखते हुए अपनी योग साधना से विचलित नहीं होते हैं, वही ज्ञानसम्पन्न पुरुष अपनी बुद्धि में परमात्मतत्व का अनुभव करते हैं तथा माया के जन्म मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। इसका कारण यही है कि रजोगुण के प्रभाव से फलासक्ति तथा तमोगुण के प्रभाव से मोह तथा अज्ञान ही बन्धन का कारण होता है तथा फलासक्ति के अभाव में विशुद्ध सतोगुण का प्रकाश अन्तःकरण में होता है। यही सतोगुणी प्रकाश परमात्मा के सर्वव्यापी स्वरूप का बुद्धि को अनुभव कराता है। अतः सभी आध्यात्मिक

साधनों का परिणाम अन्तःकरण में सतोगुण की वृद्धि तथा रजोगुण और तमोगुण के प्रभाव से अन्तःकरण को मुक्त करना होता है, क्योंकि सतोगुण विशुद्ध जल के समान है तथा रजोगुण एवं तमोगुण धूल तथा कीचड़ के समान हैं। इस कार्य की सिद्धि के लिए कर्मयोग रामबाण जैसी औषधि है। भगवान श्रीकृष्ण का भी यही कहना है कि–

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।
एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानि इति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्।।

अर्थात् निष्कामभाव से यज्ञ, तप तथा दान जैसे कर्म त्यागना नहीं चाहिए अपितु श्रद्धा तथा तन्मयता के साथ अवश्य करना चाहिए, क्योंकि अन्तःकरण की शुद्धि इन्हीं कर्मों का परिणाम होती है। किंतु यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि इन कर्मों को कर्त्तव्य बुद्धि से फलासक्ति त्याग कर करने पर ही वांछित परिणाम होगा। कारण यही है कि फल की कामना वाले कर्म सबीज होते हैं जिनका किसी न किसी जन्म में अंकुरित होकर फल देना प्रकृति का स्वभाव है किंतु जो निष्काम कर्म हैं उसका तो एकमात्र फल आत्मसाक्षात्कार है।

सभी प्रकार के कर्मों का लेखाजोखा कर्माशय में सुरक्षित रहता है जिसका मूल तथा आधार माया के पंच क्लेश हैं, क्योंकि –

क्लेशमूलो कर्माशयः

अर्थात् महर्षि पतंजलि के अनुसार कर्माशय का सृजन पंच क्लेशों के द्वारा होता है। इन क्लेशों का विवरण सूत्र के स्पष्टीकरण में किया गया है। संक्षेप में मैं पुनः स्मरण दिलाना चाहता हूँ कि अविद्या वह भ्रान्तिजन्य विपरीत तथा मिथ्या ज्ञान है जिसके प्रभाव में प्रतिक्षण परिवर्तनशील केवल नामरूप का विकारमात्र अनित्य संसार सत्य भासित होता है, गुण तथा पंचभूतादि विकारों से निर्मित स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर अशुद्धि से परिपूर्ण होते हुए शुद्ध प्रतीत होते हैं, विषयभोगों के क्षणिक तथा स्पर्शमात्र एवं भ्रान्तिजन्य दुःख सुखरूप प्रतीत होते हैं जबकि सत्यता है कि –

परिणामतापसंस्कारदुःखैः गुणवृत्ति विरोधाच्च सर्वं दुःखमेव विवेकिनः
एषः आत्मा एव परमानन्दः एतस्यैव आनन्दस्थानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति

अर्थात् विषयों में इन्द्रियों द्वारा क्षणिक सुख की प्रतीति वृत्तिजन्य है न कि पदार्थों से उत्पन्न सुख, तभी तो विषयदार्थों के अभाव में भी स्वप्न में उसी सुख की प्रतीति होती है किंतु भ्रान्तिज्ञान भी उसी प्रकार का है जैसा कि किसी कुत्ते को हड्डी चूसने पर होता है जबकि वह जबड़ा घायल होने से अपने ही खून को चूसता है। इसके अतिरिक्त विषयसुख खुजली जैसा सुख है जो कि खुजाने पर कष्ट तथा रोग दोनों बढ़ जाते हैं। यही परिणाम दुःख है, इसी प्रकार

भौतिक ताप, अधिदैविक ताप तथा मानसिक ताप वाले दुःख तथा परस्पर वृत्तिविरोध से उत्पन्न होने वाले दुःख यानि सभी विषयभोग वाले सुख केवल दुःख के रूप हैं। आनन्द का समुद्र तो केवल आत्मतत्व है जिसके अंशमात्र (बूँद) के रूप में सभी जीव जीवित हैं। इसी प्रकार तेइस तत्वों वाली अपरा प्रकृति अचेतन होते हुए भी आत्मतत्व के सान्निध्य से चैतन्यमय दिखाई देती है, यही 'अविद्या' है। क्षेत्र (अचेतनप्रकृति) तथा क्षेत्रज्ञ (आत्मतत्व) की भिन्न होते हुए एकात्मता तथा अभिन्नता की अनुभूति 'अस्मिता' है। वांछित पदार्थों में रुचि तथा अवान्छित पदार्थों में अरुचि क्रमशः राग तथा द्वेष हैं जो कि सभी प्राणियों तथा वनस्पतियों में प्रत्यक्ष है तथा समस्त क्रियाओं का प्रेरणास्त्रोत है। अपने शरीर तथा शरीर से सम्बन्धित सभी संसारी वस्तुओं तथा सम्बन्धों में आसक्ति के कारण मृत्यु का भय ही 'अभिनिवेश' है। इन्हीं पंच क्लेशों के प्रभाव में किये जाने वाले कर्म कर्माशय बनाते हैं। कर्माशय के फल देने के लिए परिपक्व कर्म प्रारब्ध का सृजन करते हैं, क्योंकि

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः

अर्थात् जीवों के शरीर, शरीर में प्राप्त होने वाले सुख–दुःख रूपी भोग तथा शरीर की आयु का निर्धारण यही प्रारब्ध कर्म करता है। यही परमात्मा का विधान है। श्रुति इसकी पुष्टि करती है कि –

विकरोत्यपरान् भावान् अन्तश्चित्ते व्यवस्थितान्।
नियतान् च वहिर्चित्तः एव संकल्पयते प्रभुः।।

अर्थात् परमात्मा के विधान के अनुसार विकारयुक्त जो भावनायें आन्तरिक चित्त में व्यवस्थित रहती हैं वह स्वप्न का संसार बनाती हैं और जो प्रारब्ध के अनुसार स्वभावजन्य बाह्य अन्तःकरण में भावनायें तथा संकल्प बनते हैं उनसे प्रत्येक जीवात्मा का संसार बनता है। इसमें जीवात्मा को स्वतन्त्रता नहीं है, फिर भी अज्ञानवश जीव इस विडम्बना में फंसे रहते हैं कि –

पुण्यात् सुखमाप्नुयान्ति पुण्यं नैव कुर्वन्ति मानवाः।
पापात् दुःखमाप्नुयान्ति पपं कुर्वन्ति यत्नतः।।

अर्थात् क्षणिक सुख की अनुभूति पुण्यकर्म का फल होता है, फिर भी मानव पुण्यकर्म नहीं करना चाहते तथा दुःख की अनुभूति पापकर्म का फल होता है फिर भी मानव पापकर्म करने में प्रयासरत रहते हैं। यही कर्म की विचित्र विडम्बना है कि 'बोया पेड़ बबूल का तो आम कहाँ से खाय' वाली स्थिति है। सकाम कर्म सबीज होने के कारण फल देने के बाद नष्ट हो जाते हैं किंतु बीज छोड़ जाते हैं किंतु निष्काम कर्म अविनाशी है। यह बात भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं स्वीकार किया है कि –

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।।

अर्थात् ईश्वर को अर्पण किया हुआ निष्काम कर्म अविनाशी है, क्योंकि उसके आरम्भ का नाश नहीं होता है और न उसमें वृत्तिविरोध की बाधा आती है। अतः किंचितमात्र भी किया गया निष्काम कर्म परमात्मा के समीप ले जाने वाला होता है। एक और परम रहस्य की बात है कि –

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तात् तथैव भजाम्यहम्

अर्थात् हम परमात्मा की जिस भावना से युक्त होकर उपासना करते हैं, परमात्मा भी हमारा उसी भाव में स्मरण करता है। परमात्मा की यही प्रतिज्ञा जीवात्माओं की मुक्ति का कारण बनती है। यही परमात्मा की वाणी भी है कि –

एवं सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।

अर्थात् जो जीवात्मायें भक्तिपूर्वक निष्काम कर्म के द्वारा मेरी उपासना में निरन्तर लगी रहती हैं, उन्हें मैं बुद्धियोग दे देता हूँ जिसके परिणामस्वरूप वह मुझे प्राप्त कर लेती हैं।

'माया बड़ी प्रबल है। वह जीव को भुलाये रखती है। इसीलिए वह शरीर, नाम तथा प्राणि-पदार्थों से अहंता-ममता हटाने की बात तो सोचता ही नहीं, उलटा अधिक-अधिक अपने इस भ्रम को परम सत्य मानकर राग-द्वेष में फँसता चला जाता है और शरीर तथा नाम के लिए नये-नये पापकर्म करता रहता है। जीवन के नपे-तुले श्वास इसी में बीत जाते हैं। काम-क्रोध-लोभ-परायण होकर वह मृत्युपर्यंत चिंता, अशांति, दुःख तथा अभाव का अनुभव करता हुआ पापकर्म की भारी राशि लेकर उसका कुफल भोगने के लिए इस शरीर को त्यागकर अन्यान्य आसुरी योनि अथवा अधम गति में चला जाता है। यों जीव आया तो था मानवशरीर में मोक्ष का साधन करके मुक्त होने के लिए, सो तो हुआ ही नहीं; उलटे नरकों तथा नीच योनियों का अधिकारी बनकर चला जाता है। यह बहुत बड़े पश्चाताप तथा दुःख का विषय है।'

श्री गीतामृत – पदावली

प्रेषक – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

(गतांक से आगे)

फलाभिलाषा–रहित, संयमी, सुख–सामग्री तजकर आप।
तन से केवल कर्म निभाता, रहता है वह नर निष्पाप।।21।।

जो मिलता, सन्तुष्ट उसी से, हर्ष, शोक, ईर्ष्या से हीन।
सिद्धि–असिद्धि सभी में सम नर, करता कर्म न होकर लीन।।22।।

जिसका मन ज्ञानस्थित रहता, जो है मुक्त, कामना–हीन।
यज्ञ–कर्म जो करता केवल, होते उसके कर्म विलीन।।23।।

ब्रह्मार्पण हवि है, उसने ही, ब्रह्मानल में हवन किया।
वही ब्रह्म में मिलता जिसने, कर्म ब्रह्ममय देख लिया।।24।।

और दूसरे योगी जन तो, दैविक यज्ञ किया करते।
तथा यज्ञ से यज्ञ हवन कर, ब्रह्मानल में कुछ धरते।।25।।

संयमाग्नि में श्रवण आदि का, हवन अन्य योगी करते।
इन्द्रियाग्नि में शब्द आदि की, आहुति कुछ योगी धरते।।26।।

इन्द्रिय–कृत सब ही कर्मों को भी तथा प्राण के कर्म सभी।
ज्ञान–ज्वलित योगानल में, आहुति करते कुछ योगी भी।।27।।

करते यज्ञ योग का, धन का, तप का भी कुछ योगी अन्य।
यज्ञ ज्ञान का, शास्त्र–मनन का, पुरुष संयमी करते धन्य।।28।।

प्राण अपान, अपान प्राण में, आहुति कुछ योगी धरते।
प्राण–अपान रोककर कुछ तो, प्राणायाम किया करते।।29।।

नियमित भोजन करने वाले, हवन प्राण में करते प्रान।
यज्ञों द्वारा पाप–मुक्त ये, सभी यज्ञ का रखते ज्ञान।।30।।

ब्रह्म सनातन में मिल जाते, यज्ञामृत जो पीते तात।
यह भी लोक न यज्ञहीन का, और लोक की फिर क्या बात।।31।।

विविध यज्ञ का इसी भाँति है, वेदों के द्वारा विस्तार।
कर्म–जनित उन–सबको जानो, है यह ज्ञान मुक्ति का द्वार।।32।।

द्रव्य–युक्त यज्ञों से अर्जुन! ज्ञान–यज्ञ उत्तम तू जान।
पार्थ! ज्ञान में सब कर्मों का हो जाता है पर्यवसान।।33।।

प्रश्नों से, सेवा के द्वारा तथा विनय से पा तू ज्ञान।
तत्व–विवेकी ज्ञानी जन ही, तुझे सिखाएँगे, यह जान।।34।।

उसे जानकर पार्थ! मोह में, नहीं पड़ेगा पुनः कभी।
मुझमें एवं अपने में भी, देखोगे तुम जीव सभी।।35।।

सभी पापियों से भी बढ़कर, तुझपर यदि पापों का भार।
ज्ञान-नाव के द्वारा अर्जुन! होगे तुम उन-सबके पार।।36।।

जलती हुई आग में पड़कर, लकड़ी होती भस्म यथा।
कर्म सभी हो जाते अर्जुन! ज्ञानानल में भस्म तथा।।37।।

हे अर्जुन! है नहीं यहाँ पर, पावन कुछ भी ज्ञान-समान।
स्वयं काल पाकर योगी जन, अपने ही में पाते ज्ञान।।38।।

पुरुष संयमी श्रद्धावाले, तत्पर रहकर पाते ज्ञान।
परम ज्ञान पाकर, पा लते, शीघ्र शान्तिमय अमर स्थान।।39।।

श्रद्धा-ज्ञान-शून्य, संदेही, पुरुष नष्ट हैं हो जाते।
लोक तथा परलोक न सुख ही, संशयवाले हैं पाते।।40।।

संशय दूर ज्ञान से करके, त्याग योग से कर्म सभी।
कर्मों के बन्धन में पड़ते, ज्ञानीजन हैं नहीं कभी।।41।।

संशय जो अज्ञान-जनित है, उसे धरो मत तुम मन में।
ज्ञान-अस्त्र से काट उसे, हो खड़े युद्ध को अब रन में।।42।।

▣▣▣

(शेष अगले अंक में)

योग में गायत्री मन्त्र का स्वरूप

डा. जे.पी. शर्मा, पाँटा साहिब जि. सिरमौर (हि. प्र.)

गायत्री समस्त ब्रह्माण्ड के ज्ञान विज्ञान की माता है। वेद इनके पुत्र कहे गये हैं। इसी कारण इन्हें वेदमाता कहा जाता है। गायत्री ब्रह्मा जी की शक्ति हैं। ब्रह्मा जी चर्तुमुखी हैं इनके एक–एक मुख से एक–एक वेद निकले हैं। ॐ भूर्भुवः स्वः से ऋग्वेद, तत्सवितुर्वरेण्यं से– यजुर्वेद, भर्गोदेवस्य धीमहि से – सामवेद तथा धियो योनः प्रचोदयात् से अथर्ववेद की रचना हुई है। चारों वेदों में संसार का समस्त ज्ञान भरा पड़ा है। सारे ज्ञान विज्ञान की जननी होने के कारण बीज में जैसे वृक्ष तथा वीर्य में जैसे मनुष्य सन्निहित होता है, उसी प्रकार से माता गायत्री की शक्ति सब प्राणीमात्र में छिपी हुई है। गायत्री का अर्थ इस प्रकार कहा गया है–

गयान् प्राणान् त्रायते सा गायत्री।

अर्थात् जो गय (प्राणों की) रक्षा करती है उसे गायत्री कहते हैं। प्राण हमारे शरीर में चैतन्यता तथा सजीवता देते हैं प्राण ही शरीर में मुख्य हैं। प्राणों से जीवन की सारी क्रियायें प्रतिपल चल रही हैं। प्राण के बिना शरीर मर जाता है। प्राण धारण करने वाले को प्राणी कहा जाता है। प्राण रहित शरीर की कोई महत्ता नहीं रहती। उसे गाढ़ या जला दिया जाता है। गय प्राणों को कहते हैं, अतः जो प्राणों की रक्षा करती है, उसे गायत्री कहते हैं।

प्राणा गया इति प्रोक्तात्वा यते तानथापि वा

जिससे प्राणों की रक्षा होती है, वह गायत्री है।

तद्यत्प्राणं त्रायते तस्माद् गायत्री

जो प्राणों की रक्षा करे वही गायत्री है– गयान् त्रायंते गायत्री।

गायस्त्रायते देवि! तदगायत्रीति गद्यसे।

गय: प्राण इति प्रोक्तस्तस्य त्राणादपीति वा।। (वशिष्ठ)

अर्थात् हे देवी! तुम उपासक की रक्षा करती हो, इसी कारण आपका नाम गायत्री है। 'गय' प्राणों को कहते हैं। प्राणों की रक्षा करने से गायत्री नाम होता है।

पौराणिक चर्चाओं के अनुसार गायत्री ब्रह्मा जी की मानस पुत्री कही गयी है। परंतु पदम् पुराण में इन्हें ब्रह्मा जी की शक्ति कहा गया है। इनका दूसरा नाम सावित्री है। कथा आती है एक बार ब्रह्मा जी ने विशाल यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञ पुष्कर में होना था परंतु उस समय ब्रह्मशक्ति सावित्री ब्रह्मपुरी में थी। यज्ञारम्भ करने के लिए सावित्री को बुलाने ब्रह्मा जी के मानस पुत्र नारद गये थे। उधर शुभ मुहूर्त निकलने को था। कहते हैं कि यज्ञ

कराने वाले ब्राह्मणों के आदेशानुसार सावित्री की स्वर्ण प्रतिमा बनाकर यज्ञ में ब्रह्मा जी के साथ उनकी पत्निरूप में रखकर पूजा आरम्भ कर दी गयी। कुछ समय बाद ही सावित्री भी यज्ञ स्थल पर पहुँच गई। उन्हें अपनी स्वर्ण प्रतिमा देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। सावित्री जी ने कहा कि पत्नि का काम स्वर्ण प्रतिमा से चलाया जा सकता है क्या? यज्ञ में आये देव सभी निरुत्तर हो गये तथा क्रोध से व्याकुल सावित्री जी यज्ञस्थल से तेज गति से भाग चलीं। उन्हें कुछ भी सूझ नहीं रहा था। रास्ते में कामधेनु आ रही थी। श्री सावित्री, कामधेनु गाय के मुँह में प्रवेश कर गयी तथा गाय के शरीर से बाहर निकल आयी। उनका स्वरूप बदल चुका था। गाय के शरीर से शुद्ध शान्त होकर बाहर निकल कर वह सावित्री से गायत्री बन गयी। कहीं–कहीं यह भी बतलाया गया है कि सावित्री के आने में विलम्ब के कारण ब्रह्मा जी ने गोपकुमारी से गन्धर्व विवाह करके यज्ञारम्भ किया था। अतः ब्रह्मशक्ति सावित्री ही गायत्री है। यज्ञ की पूर्णाहुति बाद में की गयी।

सदसद् ब्रह्मस्वरूपा त्वं किंचित सदसदात्मिका।
परात्परेशी गायत्री नमस्ते मातरम्बिके।।

अर्थात् इस संसार में जो भी सत–असत है, वह सब ब्रह्मस्वरूप गायत्री ही है। हे अम्बिके माता तुम परे से भी परे हो। तुम्हें नमस्कार है।

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात् सत्यं विशिष्यते।।

अर्थात् एकाक्षर प्रणव (ॐ) ही परम ब्रह्म है तथा प्राणायाम ही परम तप है। मौन से सत्य ही विशिष्टतर है। गायत्री से उत्तम कोई मन्त्र नहीं है। वेदव्यास ने कहा है–

नमो नमस्ते गायत्रि सावित्रि त्वा नमाम्हाम्।
सरस्वति नमस्तुभ्यं तुरीये ब्रह्मरूपिणी।।

हे गायत्री देवी! हे सावित्री! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे सरस्वती देवी आपको नमस्कार है। ब्रह्मरूपिणी तुरीयावस्था स्वरूपे! आपको मेरा नमस्कार है।

परमात्मा तु या लोके ब्रह्मशक्ति विराजते।
सूक्ष्म च सात्विका चैव गायत्री साभिधीयते।।

अर्थात् समस्त लोकों में परमात्म स्वरूपिणी जो ब्रह्म शक्ति विराज रही है, वही सूक्ष्म रूप से सत– प्रकृति के रूप में गायत्री के नाम से ही जानी जाती है।

गायत्री के चौबीस अक्षर ज्ञान के चौबीस सागर हैं। उनकी थाह पाना मनुष्य के वश में नहीं है। इन चौबीस अक्षरों में ज्ञान का सारा ज्ञान कोश छुपा हुआ है। मन्त्रों में शक्ति होती है। मन्त्र दो शब्दों से मिलकर बना है। मन तथा त्राण अर्थात् मन की रक्षा करने वाले को मन्त्र

कहा जाता है। मन्त्र शब्दों में गुंजन रूपी विद्युत तरंगें पैदा होती हैं जिनके द्वारा तरह–तरह के आध्यात्मिक, लौकिक, परमार्थिक कार्य पूर्ण हुआ करते हैं। मन्त्रों का प्रत्येक अक्षर अपनी विशिष्ट शक्ति रखता है, इसी कारण मन्त्रोच्चारण शुद्धरूप से करने पर ही पूर्ण सफलता प्राप्त होती है। गायत्री मन्त्र से बढ़कर कोई मंत्र नहीं है। इसीलिए गायत्री को मंत्र शिरोमणि कहा जाता है। जैसे ईसाई धर्म में 'बपतिस्मा' मुसलमानों में 'कलमा' श्रेष्ठता से पढ़ा जाता है। उसी प्रकार हिन्दु धर्म में गायत्री मंत्र श्रेष्ठ माना गया है। गायत्री मंत्र के अक्षरों में सारा आयुर्वेद का खजाना भरा हुआ है। विभिन्न औषधियाँ बनाने के साथ–साथ सोना बनाने की विद्या का ज्ञान भी गायत्री मंत्र में निहित है। अग्नेयास्त्र, वरुणास्त्र, ब्रह्मास्त्र, रसायनास्त्र जीवाणुस्त्र आदि हथियार बनाने के सूक्ष्म संकेत तथा विधियाँ व विधान छिपे हैं। गायत्री वेदों की जननी है जो समस्त विश्व की श्रेष्ठ शक्तियों को पैदा करती हैं तथा उन्हें अपने दिव्य प्रकाश से आलोकित करती है, इसलिए गायत्री ही सावित्री है। जैसे–

सवितृद्योतनात् सैव सावित्री परिकार्तिता।
जातः प्रसवितृत्वात वाग रूपत्वात सरस्वती।।

अर्थात् विश्व को पैदा करके प्रकाशित करने से सावित्री कहलायी और वाणी रूपिणी होने से सरस्वती कही गयी है। गायत्री का उपास्य सूर्य अर्थात् सविता है। सूर्य की किरणें सात रंगों की तथा सूर्य के वाहन रथ में सात अश्व जुते हैं। सूर्य को सहस्त्रांशु भी कहते हैं। सहस्त्रांशु ही गायत्री ही सहस्त्र शक्तियाँ हैं, इसीलिए गायत्री के सहस्त्र नाम कहे गये हैं। परंतु अष्टोत्तरशत नाम अधिक प्रचलित है। इनमें भी चौबीस नामों की प्रमुखता कही गयी है। इनमें से बारह दक्षिण पक्षीय और बारह वाम पक्षीय हैं। दक्षिण पक्ष को **आगम** तथा वाम पक्ष को **निगम** कहा गया है–

गायत्री बहुनामास्ति संयुक्ता देव शक्तिभिः।
सर्व सिद्धिषु व्याप्ता सा इष्टा मुनिभिराहता।।

अर्थात् गायत्री के असंख्य नाम हैं। सारी देवशक्तियां उसी से अनुप्राणित होती हैं। सारी सिद्धियों में उसी गायत्री का दर्शन होता है।

चतुर्विंशतु वर्णेषु चतुर्विंशति शक्तयः।
शक्ति रूपानुसार च तासां पूजाविधीयते।।

अर्थात् गायत्री के चौबीस अक्षरों में चौबीस देवशक्तियाँ रहती हैं। उनके अनुरूप ही पूजा अर्चना की जाती है।

आद्यशक्ति स्तथा ब्राह्मी वैष्णवी शाम्भवीति च।
वेदमाता देवमाता विश्वमाता ऋतम्भरा।।

मन्दाकिन्यजपा चैव ऋद्धि सिद्धि प्रकीर्तिता।
वेदकानि तु नायान पूर्वोक्तानि कि द्वादश।।

1. आद्यशक्ति, 2. ब्राह्मी, 3. वैष्णवी, 4. शाम्भवी, 5. वेदमाता, 6. देवमाता, 7. विश्वमाता, 8. ऋतम्भरा, 9. मन्दाकिनी, 10. अजपा 11. ऋद्धि 12. सिद्धि– यह सब वैदिकी वर्ग के नाम हैं।

सावित्री सरस्वती ज्ञेया, लक्ष्मी दुर्गा तथैव च।
कुण्डलिनी प्राणाग्निश्च भवानी भुवनेश्वरी।।
अन्नपूर्णेति नामानि महामाया पयस्विनी।
त्रिपुरा चैवेति विज्ञेया तान्त्रिकानि च द्वादश।।

1. सावित्री 2. सरस्वती 3. लक्ष्मी 4. दुर्गा 5. कुण्डलिनी 6. प्राणाग्नि 7. भवानी 8. भुवनेश्वरी 9. अन्नपूर्णा 10. महमाया 11. पयस्विनी 12. त्रिपुरा – यह सब तान्त्रिक वर्ग के नाम हैं। अतः बारह ज्ञान वर्ग तथा बारह विज्ञान वर्ग की शक्तियों से मिलकर चौबीस अक्षरीय गायत्री मंत्र बना है। समस्त ब्रह्माण्ड में गायत्री की ही चेतना व्याप्त है। जड़–चेतन सभी में इसी शक्ति का वास है। अतः गायत्री मंत्र में चौबीस अवतार, चौबीस देवता, चौबीस ऋषि, चौबीस गीताओं की शक्तियों का सार समाहित है। जैसे बिजली सर्वत्र व्याप्त ऊर्जा का श्रोत है जो निराकार रूप में सव्याप्त है। उसे विशेष मात्रा में इकट्ठा करने के लिए बिजलीघर बनाये हैं। बिजलीघर से लायनों के तारों द्वारा बिजली स्विच तक पहुँचायी जाती है। स्विच के साथ सम्बन्ध होने से बल्ब या अन्य उपकरण स्विच ऑन करने से बल्ब जगमगा उठते हैं।थ उपकरण गति करने लगते हैं। ऊर्जा का श्रोत बिजली ही है परंतु उससे नाना प्रकार के उपकरण, मशीनें, संयत्र, पंखे, रेडियो, टेलीविजन इत्यादि चलाये जाते हैं। उसी प्रकार गायत्री शक्ति ही अपने विभिन्न नामों तथा रूपों में सर्वत्र फैली हुई है। जैसे जड़, छाल, तना, टहनी, पत्तियाँ, फूल, पराग, फल तथा बीज आदि सब पेड़ के ही अंग होते हैं, उनके रूप, नाम, रंग, गन्ध तथा स्वाद मिलाकर सब कुछ वृक्ष के परिवार के ही अंग कहे जाते हैं, उसी प्रकार गायत्री की चौबीस शक्तियाँ हैं। हर देव की अपनी पृथक गायत्री है। सूर्य की सूर्य गायत्री, ब्रह्म की ब्रह्म गायत्री, विष्णु गायत्री, गणेश गायत्री, दुर्गा गायत्री, शिव गायत्री तथा गुरु गायत्री इत्यादि है।

ब्रह्म एक है। उसकी इच्छा एक से अनेक बनने की हुई। उसकी यह इच्छा ही शक्ति बन गयी। इच्छा ही सर्वोपरि होती है। उसी इच्छा शक्ति के प्रभाव से सृष्टि जगत का निर्माण हुआ है। ब्रह्म की यही शक्ति गायत्री है जिसे आद्यशक्ति भी कहा जाता है। ब्राह्मी शक्ति गायत्री हंस की सवारी करती है। उनके एक हाथ में पुस्तक दूसरे में कमण्डल है। गायत्री की उपासना से साधक हंसराज बन जाता है। हंस को दूध से पानी पृथक करने की अद्‌भुत

शक्ति है। उसी प्रकार गायत्री का साधक, रजोगुण तथा तमोगुण से रहित होकर सतोगुणी बन जाया करता है। जिस प्रकार हंस अपने स्वभाव के कारण केवल दूध का पान करता है तथा पानी का त्याग करता है, उसी प्रकार गायत्री साधक उत्तरोत्तर सद्‌गुणों को ग्रहण करता हुआ अज्ञानता को छोड़ता रहता है। दूध गाय से मिलता है इसी कारण गायत्री शक्ति को ब्राह्मणों की कामधेनू कहा जाता है। यहाँ दूध को ज्ञान का द्योतक कहा गया है। सद्‌गुणों वाला व्यक्ति ही ब्राह्मण कहलाने के योग्य होता है। गायत्री अथाह शक्तियों का भंडार है। जगत का हर प्राणी हर पल गायत्री की शक्ति से गतिशील है। अपने स्वास-प्रश्वास में गायत्री मंत्र जप रहा है जिसका उसे ज्ञान-चेतना नहीं है, वही अजपा गायत्री है। इसे हंसगायत्री भी कहा जाता है। अजपाजप ही सर्वोत्तम श्रेष्ठ मंत्र है। योग साधना का मूल आधार अजपा को ही कहा गया है। अजपा गायत्री का फल तभी मिलता है जब साधक जपकाल में सचेत रहे। सचेतन अवस्था में श्वास-प्रश्वास के साथ जपने से पूर्णलाभ प्राप्त किया जा सकता है। श्री सद्‌गुरुदेव भगवान ने हमें अपने गुरु मंत्र जपने की विधि भी श्वास – प्रश्वास के साथ ही बतलायी है। अजपा का आत्मा के साथ सीधा सम्बन्ध होता है। जैसे हंस केवल दुग्धपान किया करता है तथा पानी को त्याग देता है तथा अन्य जानवरों की भांति कीड़े मकोड़े नहीं खाता है। उसी तरह अजपा गायत्री की साधना करने वाला अज्ञानता व अन्धकार को त्याग देता है केवल सद्‌गुणों को ही अर्जित करता है। गायत्री का सम्बन्ध आत्मा से तथा सावित्री का भौतिकता से रहा करता है। हमारे पूर्वजों ने 'ग' परक देवों की महत्ता बतलायी है जिनके पूजन से प्राणी धन्य हो जाता है–

गीता, गंगा, गौ, गायत्री, गौरी, गणपति, गुरु, गोपाल

गंगा जी तथा गायत्री का जन्म दिन एक ही है तथा वह ज्येष्ठ शुक्ल दसवीं को गंगा दशहरा के रूप में प्रति वर्ष मनाया जाता है।

गायत्री ह्रदय की चेतन्यज्योति स्वरूपा है। इनकी कृपा प्राप्ति के लिए साधक को अपने प्राण, व्यान, अपान, उदान तथा समान पांचो प्राणों के द्वार वश में करने पड़ते हैं। गायत्री साधना से अपने दिल में स्थित ब्रह्मस्वरूप गायत्री का साक्षात्कार होता है जिससे लौकिक तथा पारलौकिक सुख मिलता है।

गायत्री एक वैदिक छंद है तथा इसकी देवी के रूप में पूजा होती है। गायत्री वेदों का तत्व है। फूलों से शहद मिलता है, दूध के दोहन से घी, घास फूस से दूध बनता है, उसी प्रकार गायत्री की महिमा सर्वत्र फैली हुई है।

गाय तो मुखा दुदपतत् इति च ब्राह्मणम्।

ब्रह्मा जी के मुख से वेदाच्चारण के समय प्रगट होने के कारण इनका नाम गायत्री है।

गायत्री मन्त्र का स्वरुप :

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

मंत्र के एक–एक अक्षर का अर्थ इस प्रकार है–

ॐ (ब्रह्म) भू (प्राणस्वरूप) भुवः (दुखनाषक) स्वः (सुखस्वरूप) तत् (उस) सवितु (तेजस्वी, प्रकाशमान) वरेण्यं (श्रेष्ठ) भर्गो (पापनाषक) देवस्य (देने वाले की) धीमहि (धारण करें) धियो (बुद्धि) यो (जो) नः (हमारी), प्रचोदयात् (प्रेरित करें)।

मंत्र का अर्थ इस प्रकार हुआ–

उस सुखस्वरूप, दुखनाशक, श्रेष्ठ तेजस्वी, पापनाशक, प्राणस्वरूप, ब्रह्म को हम धारण करते हैं जो हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरणा देता है।

गायत्री मंत्र में चौबीस अक्षर हैं जो तीन पदों में विभक्त हैं। अतः इसे त्रिपदा गायत्री भी कहते हैं। यह दैहिक, दैविक तथा भौतिक तापों को दूर करने वाली है। इसमें सत, रत, तम तीन गुणों की प्रधानता है। यह विद्याओं में सर्वश्रेष्ठ गायत्री विद्या है। इसके तीन रूप लक्ष्मी, सरस्वती तथा काली है।

ह्रीं श्रीं क्लीं चेसि रूपेम्यस्त्रिम्यो हि लोक पातिका।
भासते सततं लोके गायत्री त्रिगुणात्मिका।।

(गायत्री संहिता)

गायत्री समस्त वेदों की माता तथा समस्त शास्त्रों का सार है। चारों वेद गायत्री ने ही प्रकट किये हैं–

गायत्र्येव मता माता वेदानां शास्त्रसम्पदाम्।
चत्वारोऽपि समुत्पन्ना वेदास्तस्या अशंसयम्।।

(गायत्री संहिता)

गायत्री के अनेकों रूप हैं परंतु उनके मुख्य ध्यान का स्वरूप इस प्रकार है–

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखस्त्रीक्षणै,
र्यक्तमिदुनिबद्धरत्न मुकुटां तत्वात्मवर्णात्मिकाम्।
सावित्रीं वरदाभयाङ्कुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं,
शंख चक्रमथार विन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे।।

गायत्री देवी के पाँच प्राण हैं– प्राण, अपान, उदान, समान तथा व्यान। इनके पाँच मुख हैं। पृथ्वी, जल, वायु, गगन तथा अग्नि के धारण करने वाले हैं। माता पुष्प कमल पर बैठती है। इनके दस हाथ हैं। इनके दसों हाथों में दस विभिन्न प्रकार के हथियार – शंख, चक्र, कमलयुग्म, वरद, अभय कशा, अंकुश, उज्जवल पात्र तथा रूद्राक्ष की माला से सुशोभित हैं।

(शेष अगले अंक में)

वेद मानव की प्रार्थना

अग्ने नो अग्ने ऊतिभिर्गायत्रस्य

प्रभर्मणि विश्वासु धीषु वन्द्य।

आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम्

विश्वासु पृत्सु दुष्टरम्।

आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं

विश्वायुपोषसम्।

मार्डीकं धेहि जीवसे।।

हे वन्दनीय परमेश्वर! आप, प्राणों के प्राण, शरीर के रक्षण, पालन, भरण–पोषण के अनेक साधनों से हमारी रक्षा कीजिए।

हे परमेश्वर! हमें समस्त विपत्तियों को नष्ट करने वाले सर्वश्रेष्ठ बल–शक्ति की प्राप्ति कराइये, जिसका मनुष्यों और संग्राम में शत्रुओं के लिए पार पाना दुर्गम हो, हमें अपार बल प्रदान कीजिए और अक्षय धन से सम्पन्न कीजिए।

हे परमेश्वर! आप हमें अपने जीवन निर्वाह तथा सभी मनुष्यों के पालन–पोषण के लिए यथेष्ट सुख, आरोग्य प्रदान करने वाला उत्तम ज्ञान तथा प्रचुर मात्रा में अन्न से युक्त कीजिए।

(सामवेद उत्तरार्चिक 14/4/14)

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

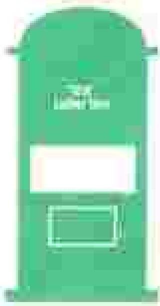

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

विभिन्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर सेल्फ इन्सर्ट (स्थान चयन) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पोंसरशिप)
3. मेल वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पोंसरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेंटिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 6.50 प्रतिवर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर की पत्रों पर स्टाम्प कैंसिलेशन की मुहर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति [illegible] रु. 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन। दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11

DECEMBER 2010

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14586. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) रामलाल शर्मा